CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधितंत्रानुशीलन

(समाधितंत्र)

मूल प्रणेता
आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी

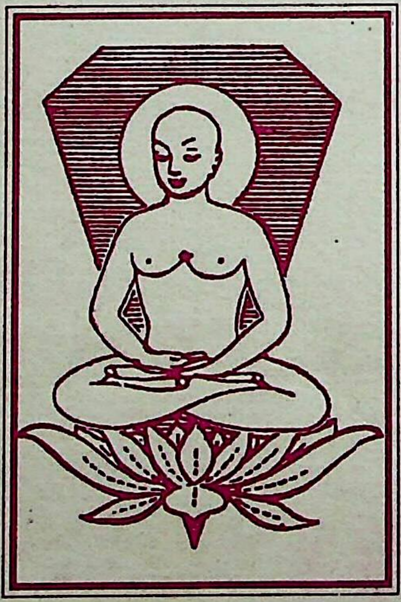

भावानुवादक :-
नाथूराम डोंगरीय जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामायिक करने की सरल विधि

सामायिक करने का मूल उद्देश्य माया मोह के जाल में दिन रात फँसे मानव को दो घड़ी के लिए सांसारिक संकल्प विकल्पों से मुक्त कर आत्मा को शांति प्रदान करना है। विधि निम्न प्रकार है :

सर्वप्रथम एकांत स्थान में गृह कार्यों का ध्यान छोड़ कर पूर्व दिशा की ओर मुँहकर के खड़े होकर ९ बार णमोकार मंत्र पढ़ें। फिर संकल्प करें कि मैं दो घड़ी के लिए सबसे राग द्वेष मोह का तथा विषय वासनाओं और हिंसादि पंच पापा का मन-वचन-कर्म से त्यागकरता हूँ। पश्चात् तीन बार णमोकार मंत्र का जाप कर दोनों हाथ जोड़ तीन आवर्त्त एवं शिरोनति करें (मस्तक झुकाएं) इसके बाद दक्षिण दिशा की ओर मुड़कर तीन बार णमोकार मंत्र पढ़ तीन बार जुड़े हुए हाथों को घुमाकर शिरोनति करें। फिर पश्चिम और इसके बाद उत्तर दिशा की ओर घूमकर तीन-तीन बार मंत्र पढ़कर आवर्त्त व शिरोनति कर के पूर्व दिशा की ओर मुड़कर पद्मासन, सुखासन या खड्गासन से स्थिर हो जाएं। ३ आवर्त्त (दोनों हाथ जोड़ कर घुमाना) और शिरोनति करने का उद्देश्य चारों दिशाओं में विद्यमान जिन मंदिरों एवं जिन प्रतिमाओं को नमस्कार करना है।

फिर स्थिर चित्त से णमोकार, असिआउसा, अरहंत सिद्ध, ॐ आदि मंत्रों का १०८ बार जाप करें तथा पंच परमेष्ठी के गुणों तथा आत्म स्वरूप का चिंतन करें। सामायिक पाठ पढ़ें, बारह भावनाओं का स्मरण करते हुए अपने द्वारा किए गए पूर्व पापों पर पश्चाताप करें। वर्तमान एवं भविष्य में पापों से बचते रहने का अपना उद्देश्य बनावें। इस प्रकार शांत भावों से अपनी सामायिक संपन्न कर फिर खड़े होकर नौ बार णमोकार मंत्र का पाठ करें। यह सामायिक की विधि है। इसके अनुसार सामायिक उत्साह पूर्वक करने से चित्त स्थिर रहेगा और शांति मिलेगी और बद्ध पापों का क्षय व उपशम भी होगा, किंतु यदि उक्त विधि से गृह कार्यों एवं पापों का त्याग न किया गया और उनका ध्यान सामायिक करते समय बना रहा तो मन के अशांत बने रहने से शांति लाभ न हो सकेगा, जिसकी लोग प्राय: शिकायत करते हैं। किसी कवि ने कहा भी है -

'माला तो कर में फिरे, जीभ फिरे मुख मांहिं।
मनुआ फिरे बजार में जो जपवो कछु नांहिं॥'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधितंत्रानुशीलन

(समाधिशतक)

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
ग्रन्थ सं० 4476
नरिया (का. हि. वि. इ.) वाराणसी-5

मूल प्रणेता

सर्वार्थसिद्धि रचयिता
श्रीमद् भगवत्पूज्यपाद स्वामी
अपरनाम
आचार्य श्री देवनंदि

भावानुवादक
नाथूराम डोंगरीय जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकाशक : एरा इन्टरप्राइजेस
७७/३, उषागंज, छावनी मेन रोड़, इन्दौर
फोन : ४६५५०३

प्रथम संस्करण : ११०० प्रतियाँ

श्रावण बदी नवमी
श्री वीर निर्वाण संवत् २५२३, विक्रम संवत् २०५४
सोमवार, दिनांक २८ जुलाई, ईस्वी सन् १९९७

प्राप्ति स्थान :

१. जैन साहित्य प्रकाशन
५४९, सुदामा नगर, इन्दौर. ४५२००९
फोन : ४८५३८६

२. एरा इन्टरप्राइजेस
७७/३, उषागंज, छावनी मेन रोड़, इन्दौर
फोन : ४६५५०३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्व. पूज्य श्री विमलचंदजी डोसी

(जन्म ५-९-१९२९---निधन १०-५-१९९३)

की

पावन स्मृति में

विनम्र भेंट

द्वारा

ऐरावती डोसी

(धर्म पत्नी)

पुत्र	-	पुत्रवधू
दिलिप	-	लता डोसी
प्रदीप	-	सरोज डोसी
डॉ. हेमंत	-	रश्मि डोसी
जयंत	-	साधना डोसी

एवं

समस्त डोसी परिवार,

छावनी, इन्दौर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तवन एवं आशीर्वचन

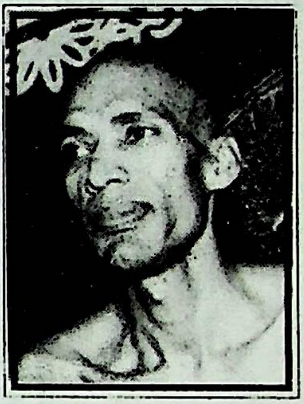

मोहांधकार में निमग्न आत्महित् पथ भ्रष्ट जनों को समाधितंत्र ग्रंथ मार्ग प्रदर्शन हेतु प्रकाश स्तंभ के समान है।

'' पंडित नाथूराम डोंगरीयजी के अभी तक के लगभग सभी धर्मग्रन्थों के अनुवाद हमने पढ़े हैं। अनुवाद मूल के अनुगामी हों और मौलिक हों, यह दोनों होना आसान नहीं है, लेकिन पंडितजी ने अपने अनुवादों में इस बात का खूब ध्यान रखा है। उनके अनुवाद सरल एवं सुपाठ्य होते हैं।

इस समाधितंत्र ग्रंथ का भावानुवाद भी सरल एवं सुगम है जो धर्मानुरागी भव्यजनों के लिये सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हेतु स्वाध्याय एवं नित्य पाठ करने में उपयोगी व लाभ प्रद सिद्ध होगा।

पंडितजी का पुरुषार्थ सराहनीय है। वे जिनवाणी की ऐसी ही सेवां हमेशा करते रहें। ''

हमारा शुभाशीष है।

–मुनि क्षमासागर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रमण संस्कृति के अग्रदूत आदर्श तपस्वी दिगम्बर जैन संत आचार्य शिरोमणि परम पूज्य १०८ श्री मुनिराज संत प्रवर श्री विद्यासागरजी महाराज

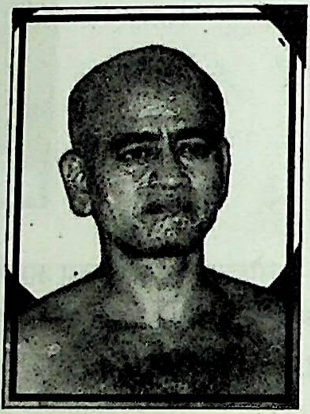

मानव समाज के सौभाग्य से इस कलिकाल में भी आपने चतुर्थकाल जैसा विलक्षण साधु जीवन अपनाकर एक महान आदर्श उपस्थित किया है। आपकी शरण एवं सान्निध्य में सैकड़ों मुमुक्षुओं ने ज्ञान विज्ञान प्राप्त करते हुए तपश्चरण एवं संयम का मार्ग अपनाकर मानव जीवन को सफल बनाया है। हजारों लाखों श्रोताओं ने प्रवचनों द्वारा धर्मामृत का पान कर स्वयं को धन्य माना एवं अनेकों ने दर्शन मात्रकर अपने भाग्य को सराहा है। आप ने अनेक ग्रंथों की रचना द्वारा आद्वितीय धर्म प्रभावना भी संपन्न की है।

इसी श्रृंखला में स्वर्गीय साधक, ब्रह्मचारी, पूज्य पंडित श्री जगन्मोहनलालजी, सिद्धांत शास्त्री को सल्लेखना व्रत प्रदान कर साढ़े तीन मास तक निरंतर संघ सहित परिचर्या करते हुए इस बीसवीं शताब्दी में अद्भुत वात्सल्य दर्शाया है। आपकी यह धर्म एवं धर्मी के प्रति वत्सलता धन्य है!

पूज्य श्री के चरणों में शत शत वंदन!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रद्धाञ्जलि !

सिद्धांत मर्मज्ञ, श्रावक शिरोमणि, विद्वद्वरेण्य,
आदर्श समाधिसाधक, ब्रह्मचारी श्रद्धेय, स्वर्गीय
पू.पं. जगन्मोहनलालजी सिद्धांत शास्त्री, कटनी

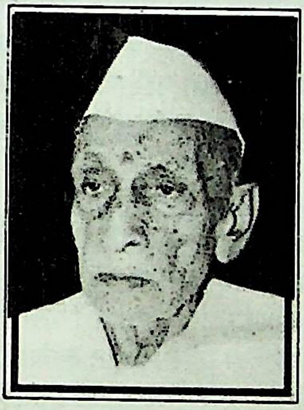

गुरूवर्य !

आपने आजीवन धर्म, समाज एवं देश की निष्पृह भाव से सेवा करते हुए अपने प्रवचनों, लेखों तथा **'अध्यात्म अमृत कलश'** ग्रंथ की रचना द्वारा निश्चय व्यवहार का समन्वय कर विवादग्रस्त समाज को बहुमूल्य मार्गदर्शन दिया एवं अंत में समाधितंत्र का अनुशरण कर सिद्धक्षेत्र कुंडलपुर जाकर आचार्य श्री विद्यासागरजी की शरण एवं सान्निध्य में साढ़े तीन मास तक सल्लेखना व्रत का दृढता पूर्वक पालन करते हुए नश्वर शरीर को विसर्जन कर इस युगीन समाज में मरणसमाधि का एक आदर्श उपस्थित किया है जो चिरकाल तक समाधि साधक श्रावकों को मार्ग दर्शन देता रहेगा।

विनीत

नाथूराम डोंगरीय जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्राक्कथन

आत्महित की दृष्टि से सम्पूर्ण विद्याओं में अध्यात्म विद्या का स्थान सर्वोपरि है। जिस आत्मा को सुख प्राप्त करना है उसका स्वरूप जाने बिना बाह्य जगत के अनंत पदार्थों से अनेक बार संपर्क कर लेने एवं उन्हें भोग लेने पर भी आज तक किसी को वास्तविक सुख और शांति प्राप्त नहीं हुई। प्रत्युत्त् विषय भोगों में सुख भ्रांति की कल्पनावश सुखार्थियों को अंत में निराशा ही हाथ लगी। यहां तक कि चक्रवर्तियों या स्वर्गीय देवी देवताओं के असीम वैभवों की विपुलता भी उन्हें सुखी नहीं बना सकी। अंत में उन्हें भी विवश होकर उनकी, नि:सारता का ज्ञान और अनुभव हो जाने से वैराग्य की शरण लेकर रत्नत्रयी मुक्ति मार्ग की शरण में ही आना पड़ा।

यत: सुख की प्राप्ति सभी प्राणियों को इष्ट है और आधुनिक विज्ञान के भौतिक चमत्कारपूर्ण आविष्कार यद्यपि मानव को इन्द्रिय विषय सुखों की पूर्ति में किन्हीं अंशों में सहायक भी प्रतीत होते हैं, किंतु उनसे आत्मा को वास्तविक सुख शांति की प्राप्ति की संभावना दिनों दिन क्षीण होती चली जा रही है। प्रत्युत् उनके भोग द्वारा मानव और भी विषयांध होकर, स्वार्थी बन सभी सामग्रियों पर एकाधिकार प्राप्त करने की आसुरी लालसावश मानवता का भी परित्याग कर दानवीय रूप धारण करता दिखाई दे रहा है।

विश्व दर्शनों में जैन दर्शन का एक विशिष्ट एवं निराला ही स्थान है। इसमें भौतिकता विहीन आध्यात्मिक सुख शांति की प्राप्ति हेतु आत्म स्वातन्त्र्य के सिवाय समदर्शिता, सत्य, शौच,संयम, तप,अहिंसा, अपरिग्रह,अनेकांत,स्याद्वाद आदि के मौलिक सिध्दांतों को आत्मसात् किया गया है। जिस से वह स्वत: ही सार्वभौम सिद्धांतों का सर्वांगीण प्रतिपादक होने से विश्व दर्शन के पद पर प्रतिष्ठित है।

किंतु इसके, उक्त प्राणीमात्र के हितकारक सिध्दांतों से अपरिचित होने एवं सांप्रदायिक संकुचित विचारों में उलझे रहने के कारण इस की उपयोगिता एवं महत्व के ज्ञान से सर्वसाधारण प्राय: वंचित ही बना हुआ है।

जैन दर्शन की सर्वोपरि मौलिक मान्यता यह है कि प्रत्येक भव्य प्राणी सम्यग्दृष्टि बन कर यदि पुरूषार्थ करे तो वह परमात्मा बन कर सदा के लिये वास्तविक सुखी बन सकता है,जब कि वह भौतिक संपत्तियों को अनंतबार भोगकर अभी तक नहीं बन सका है। यत: सुख आत्मा का ही गुण है अत: वह बाहर कहीं से प्राप्त न होकर आत्मा में ही प्रकट और प्राप्त होगा- परवस्तुओं के भोग से नहीं- उससे तो आकुलता ही बढ़ेगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम पूज्य आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी ने इसी सत्य और तथ्य को प्रस्तुत ग्रंथ द्वारा प्रकट किया है। उन्होंने आत्मा को बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा के भेद से तीन रूपों में विभक्त कर दर्शाया है। पर वस्तुओं से सुख प्राप्ति की भ्रांति में उलझे एवं शरीर को ही आत्मा मानने वाले जनों को बहिरात्मा कहा है तथा आत्मस्वरूप के अनुभवी, शरीर को आत्मा से भिन्न मानने एवं अनुभव करने वालों को अंतरात्मा और अपने पुरूषार्थ द्वारा आत्मा को शुध्द कर निर्मल एवं पूर्ण सुखी बन जाने वाली आत्मा को परमात्मा निरूपित किया है। अत: बहिरात्मपने को त्याग, अंतरात्म बन कर अपने ज्ञान एवं पुरूषार्थ के द्वारा आत्मा को परमात्मा बना कर पूर्ण सुखी बन जाने के उपदेश से ही यह परिपूर्ण ग्रंथ संजोया गया है।

वस्तुत: यह एक ऐसा ग्रंथ है जिस का रुचि पूर्वक स्वाध्याय, मनन एवं चिंतन करने से बहिरात्मा (मिथ्यादृष्टि) भी अंतरात्मा (सम्यग्दृष्टि) बन सकता है तथा अंतरात्मा बनकर परमात्मत्व प्राप्त कर सकता है।

आदि जिन भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर पर्यंत सभी तीर्थंकरों ने इसी उपदेश द्वारा तत्कालीन जनों को मार्ग दर्शन दिया था जो आचार्य परंपरा से हमें आज भी प्राप्त है।

प्रश्न : अन्य आध्यात्मिक ग्रंथों में ' **सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया** ' तथा ' **अप्पा सो परमप्पा** ' अर्थात् शुद्ध नय से सभी आत्माएं शुद्ध है और यह आत्मा ही परमात्मा है - ऐसा प्रतिपादन किया गया है। तब फिर इस ग्रंथ में बहिरात्मा, अंतरात्मा और परमात्मा - आत्मा को इन तीन भागों में विभाजित किये जाने से क्या सैद्धान्तिक विरोध प्रकट नहीं होता ? जबकि उन ग्रंथों के अनुसार सभी आत्माएं शुद्ध एवं परमात्मा हैं तब फिर आत्मा को परमात्मा बनने या बनाने के उपदेश की क्या आवश्यकता रह जाती है ?

समाधान : आपका प्रश्न जैन दर्शन के अनेकांतात्मक स्याद्वाद प्रणाली की यथार्थ जानकारी के अभाव में किया गया प्रतीत होता है। स्याद्वाद की मुख्य गौण प्रणाली द्वारा किये गये कथन में कोई विरोध नहीं है। द्रव्यार्थिक निश्चय की दृष्टि से आत्मा भी छह द्रव्यों में अपने गुणों एवं पर्यायों से युक्त स्वतंत्र सत्ता संपन्न एक द्रव्य है जिसके जीवत्व में कोई मिलावट नहीं होने से वह शुद्ध है ; किंतु पर्यायार्थिक व्यवहार नय से वह जब तक रागीद्वेषी बना रहकर कर्म बंधन में पड़ा हुआ दुखी बना हुआ है - तब तक वह अशुद्ध है तथा वही सिद्ध पर्याय को प्राप्त हुआ, शुद्ध है। अत: दृष्टि भेद से किये गये उभय कथन सत्य हैं - उनमें कोई विरोध नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक शुध्द द्रव्य दृष्टि प्रधान कथन में पर्याय दृष्टि द्वारा किया गया कथन गौण हो जाता है - निषिद्ध नहीं। उसी प्रकार पर्याय दृष्टि प्रधान कथन में द्रव्य दृष्टि गौण हो जाती है। स्याद्वादी आचार्यों ने भी अपने ग्रंथों में मुख्य गौण कथन प्रणाली को अपनाया है।

सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य श्री नेमिचन्द्र ने अपने वृहद्द्रव्य संग्रह ग्रंथ में जहां पर्याय दृष्टि से आत्मा को चौदह गुणस्थानों एवं मार्गणाओं में विभक्तकर उसकी अशुद्धता दर्शाई है वहीं पर्याय दृष्टि को गौण कर द्रव्य दृष्टि के प्रधानता से उसे शुद्ध भी निरूपित कर सर्वथैकांत का निरसन कर स्याद्वाद की मुद्रा (मुहर) लगा दी है -
वे लिखते हैं -

''मग्गण गुण ठाणे हि य चउदसहिं हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धाहु सुद्धणया ।१३।

- द्रव्य संग्रह

इसी प्रकार परम आध्यात्मिक संत आचार्य श्री योगेन्दु देव ने भी अपने परमात्म प्रकाश ग्रंथ में जो द्रव्यार्थिक शुध्द दृष्टि से -

' अप्पा सो परमप्पा '

इस कथन द्वारा आत्मा में परमात्मा बन जाने की शक्ति होने से उसे परमात्मा कहा है - वहीं उन्होंने आत्मा को बहिरात्मा, अंतरात्मा एवं परमात्मा के तीन भेदों द्वारा विभाजित भी किया है। यदि वे आत्मा को सभी पर्यायों में सर्वथा परमात्मा ही मानकर कथन करते तो न तो उसे तीन भेदों में विभाजित करते और न व्यवहार नय से निम्न लिखित कथन करते -
वे लिखते हैं -

''दाण ण दिण्णऊ मुणिवरहं णवि पुज्जिउ जिणणाह।
पंच ण वंदिय परमगुरू किमु हो सई सिव लाहु ॥२६८॥''

- परमात्म प्रकाश

अर्थात् जिन्होंने निर्ग्रंथ मुनियों को दान नहीं दिया और जिनेन्द्र भगवान की पूजा नहीं की तथा न पंच परमगुरूओं (परमेष्ठिओं) की वंदना की उन्हें शिव (मोक्ष) की प्राप्ति किस प्रकार होगी - अर्थात् नहीं होगी।

स्पष्ट है कि संसारी साधक को अपनी अशुध्द दशा से मुक्ति प्राप्त करने के लिये उक्त धार्मिक क्रियाओं का पालन करना आवश्यक है। यदि भगवज्जिनेन्द्र की आत्मा के समान हमारी (संसारी जनों की) आत्मा भी पर्यायदृष्टि से शुध्द होती तो हमें उन (जिनेन्द्र भगवान) की पूजा करने का आचार्य विधान क्यों करते ? और एक परमात्मा दूसरे परमात्मा की पूजा भी क्यों करेगा ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अत: सभी नयों की दृष्टियों को यथा प्रकरण मुख्य गौणकर समझना और उनसे वस्तु स्वरूप समझ कर अनेकांतात्मक सम्यग्ज्ञान प्राप्त करना आत्महित की दृष्टि से आवश्यक ही नहीं - आनिवार्य भी है। किसी भी नय के कथन को सर्वथा और पूर्ण सत्य न मानकर उसे एक दृष्टि प्रधान आंशिक सत्य ही समझना चाहिये एवं किसी एक नय के पक्षपाती न बन जाना चाहिये क्योंकि अनेकांत ही जिनवाणी का प्राण है और सर्वथैकांत मिथ्यात्व है।

आचार्य प्रवर परमपूज्य कुंदकुंदस्वामी ने भी यही शिक्षा अपने सुप्रसिध्द ग्रंथ समयसार में दी है। लिखते हैं -

दोण्हवि णयाण भणियं जाणइ णवरिं तु समय पडिबद्धो।
णदु णय पक्खं गिण्हदि किंचि वि णय पक्ख परिहीणो ॥
- समयसार गाथा क्र. १४३

अर्थात् - समय (आत्मा) से प्रतिबध्द मुमुक्षु जन निश्चय और व्यवहार दोनों नयों से कथित वस्तु (आत्मा) के स्वरूप को जानता है ; किंतु किसी एक नय का पक्षपाती (आग्रही) किंचित् भी नहीं बनता; क्योंकि वह नय पक्ष से रहित अनेकांतवादी (स्याद्वादी) होता है।

अत: यदि बहिरात्मा निश्चयैकांती बन स्वयं को परमात्मा ही मानकर चलेगा तो अपनी भ्रम पूर्ण मान्यता के कारण पथ भ्रष्ट होकर संसार परिभ्रमण ही करता रहेगा। अत: उसे अंतरात्मा बन कर परमात्मा की उपासना कर अपने सत्पुरुषार्थ द्वारा परमात्मा बनने का प्रयास करना ही श्रेयस्कर है।

छठवीं शताब्दी में अवतरित आचार्य प्रवर पूज्यपाद स्वामी ने सर्वार्थसिद्धि आदि अनेक ग्रंथों की रचना करते हुए देव वाणी, संस्कृत में प्रस्तुत जिनवाणी के मूल इस समाधितंत्र ग्रंथ की रचना की थी जिसका पठन पाठन धर्मानुरागी भव्यजनों द्वारा तभी से किया जाता रहा है। इसकी आचार्य श्री प्रभाचंद्र ने संस्कृत भाषा में विस्तृत टीका की है एवं हिंदी भाषा में भी टीकाएं की गई हैं। हिंदी में ब्र. श्री शीतलप्रसाद की विस्तृत टीका भी उपलब्ध है। किंतु आधुनिक सरल हिंदी भाषा में नित्य पाठ हेतु पद्यानुवाद न पाकर मन में विकल्प आया कि स्वांत: सुखाय भावानुवाद करूं जो अन्य धर्म बंधुओं को भी नित्य पाठ करने में सहायक बने। अत: यह प्रयास किया है जो मूल के साथ भावार्थ सहित प्रस्तुत है। यथाशक्ति सावधानी बरतने के पश्चात् भी यदि इसमें त्रुटियां रह गई हों तो ज्ञानी विद्वज्जनों से उन्हें दूर करने एवं मुझे भी सूचित करने का कष्ट करने की प्रार्थना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रस्तुत रचना की पांडुलिपी इंदौर में चतुर्मास संपन्न कर रहे, ज्ञान विज्ञान के धनी परमपूज्य दिगम्बर जैन मुनि १०८ श्री क्षमासागरजी महाराज के अवलोकनार्थ प्रस्तुत की गई थी- जिसे उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक अवलोकन कर शुभाशीर्वाद पूर्वक आशीर्वचन प्रदान करने की कृपा की है। उनकी इस सहज वात्सल्य पूर्ण कृपा के लिये मैं हृदय से आभारी हूं। दिगम्बर जैन समाज इन्दौर के महामंत्री इंजीनियर श्री जैन कैलाश वेद, पं. श्री जयसेन जैन एवं श्री विजय कासलीवाल ने इस ग्रंथ के प्रकाशन में जो आत्मीयता के साथ रुचि ली है तथा श्रीमती ऐरावती डोसी एवं उनके चारो पुत्र - पुत्रवधुओं, विशेषकर श्री जंयत डोसी-श्रीमती साधना डोसी ने धर्मप्रभावनार्थ अपने द्रव्य का सदुपयोग कर समाज को ग्रंथ समर्पित किया है, उनकी यह उदारता एवं धर्मानुराग सरहानीय एवं अनुकरणीय है।

धन्यवाद !

५४९, सुदामा नगर, इन्दौर
सोमवार, दिनांक २८ जुलाइ, १९९७

विनीत
नाथूराम डोंगरीय जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रंथकर्त्ता का संक्षिप्त परिचय

प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता परम आध्यात्मिक संत आचार्य प्रवर श्री देवनंदि अपरनाम श्री पूज्यपाद स्वामी के नाम से विश्रुत हैं। इनकी समय सीमा इतिहासकारों ने विक्रम की छठी शताब्दी में होना मानी है। इनका जन्म कर्नाटक प्रांत के 'कोले' नामक ग्राम में हुआ था। पिता का नाम माधव भट्ट एवं माता का नाम श्रीदेवी था। ये ब्राह्मण कुलोत्पन्न नर रत्न थे।

कहा जाता है कि इन्होंने अपनी अल्प वय में एक मेंढक को सर्प के मुख का ग्रास बनते और तड़फते देखा था। तब से ही इन्हें वैराग्य हो गया था। अत: इन्होंने अल्प वय में ही जिन दीक्षा धारण कर ली थी। मुनि अवस्था में ज्ञानाभ्यास एवं तपश्चरण करते हुए ये मूल संघ के अंतर्गत सरस्वती गच्छ एवं बलात्कारगण के पट्टाधीश बन आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। यद्यपि इनका मूल नाम देवनंदि था किंतु वन देवताओं ने इनसे प्रभावित होकर इनकी तपस्या एवं ज्ञान की पूजा की थी अत: ये तब से ही पूज्यपाद के नाम से विश्रुत हो गये।

इनकी जिनश्रुत मर्मज्ञता एवं ज्ञान गरिमा का आभास इनके द्वारा निर्मित ग्रंथ संपदा से सहज ही हो जाता है। जिनवाणी सारभूत तत्वार्थसूत्र पर सर्व प्रथम इन्होंने ही सर्वार्थ सिद्धिनामा बृहत् टीका रची जो एक प्रामाणिक धर्मशास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित है। इष्टोपदेश एवं समाधितंत्र इनकी आध्यात्मिक रचनाएं हैं। जिन का स्वाध्याय कर संसार का दु:खी मानव मार्गदर्शन प्राप्त कर आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। आप व्याकरण शास्त्र के प्रकांड एवं निष्णात् मनीषी भी थे जिन्होंने जैनेन्द्र व्याकरण नाम से एक बृहद् ग्रंथ लिखा एवं तत्कालीन पाणिनीय व्याकरण के रचयिता पाणिनी द्वारा निर्मित पाणिनी व्याकरण की अपूर्ण रचना को, उनके अनुरोध से पूर्ण किया था। दश भक्ति, जन्माभिषेक, सिध्दिप्रिय स्तोत्र आदि रचनाएं इनकी जिनेन्द्र भक्ति में आस्था प्रकट करती हैं।

आचार्य प्रवर जिनसेन ने अपने आदिपुराण की आदि में तथा हरिवंश पुराण के रचयिता प्रथम जिनसेनाचार्य ने एवं ज्ञानार्णव के रचयिता आचार्य शुभचन्द्र ने भी अपने ग्रंथों की आदि में आचार्य पूज्यपाद देवनंदि का पुण्य स्मरण करते हुए इनकी गुरुता एवं गुणगरिमा का बखान किया है। इस प्रकार श्रुतधराचार्यों में इनहें प्रमुख स्थान प्राप्त है।

अन्य कथाकारों ने इनके विषय में यह भी लिखा है कि श्री पूज्यपाद यथासमय अपने पैरों में गगनगामी लेप लगाकर विदेह क्षेत्र जाया करते थे। एक देव ने विमान द्वारा इन्हें तीर्थयात्रा भी करायी थी। एक बार इनकी चक्षुदृष्टि चली गई थी जो शान्त्यष्टक की रचना के प्रभाव से पुन: प्राप्त हो गई थीं। अंत में अपने पूर्व निवसित भूमि ग्राम में सल्लेखना पूर्वक इनका समाधिमरण सम्पन्न हुआ था।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुतधराचार्यों में आचार्य श्री पूज्यपाद को प्रमुख स्थान प्राप्त है जो आचार्य श्री कुंदकुंद एवं गृद्धपिच्छ आचार्यों के पश्चात् उन्हीं की परंपरा में अवतरित हुए। उन्हें शत शत प्रणाम !

-- ''भगवान महावीर और उनकी आचार्य परंपरा'' पर आधारित'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ नम: सिद्धेभ्य:

समाधितंत्रानुशीलन

(समाधि तंत्र)

मूल प्रणेता

श्रीमद् भगवत्पूज्यपाद स्वामी

(अपर नाम आचार्य देवनंदि)

(१)
मंगलाचरण

येनात्मा ऽ बुध्यतात्मैव परत्वेनैव चापरम् ।
अक्षयानंत बोधाय तस्मै सिद्धात्मने नम: ।।

होता उदित ध्यान बल जिसके
स्व-पर भेद विज्ञान महान ।
पर द्रव्यों से आत्म भिन्न है
स्वत: सिद्ध निज सत्तावान् ।।
जीव जीव है पर पर ही है
दें जो सहज ज्ञान अभिराम ।
अक्षय अमित ज्ञान अर्जन हित
करूँ सिद्ध प्रति नम्र प्रणाम ।।

अर्थ : आत्मा जिसके ध्यान या लक्ष्य द्वारा आत्मा को ही आत्मा एवं अन्य सब पर वस्तुओं पर रूप ही जाना जाता या जाना गया है उस सिद्ध परमात्मा की अक्षय एवं अनंत ज्ञान की प्राप्ति हेतु वंदना करता हूं।

भावार्थ ....अगले पृष्ठ पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ :

ग्रंथकर्त्ता आचार्य श्री ने मंगलाचरण में सिद्ध परमात्मा को उनके ध्यान की महत्ता एवं उपयोगिता को दर्शाते हुए नमस्कार किया है। स्वरूप विस्मृत हम संसारी प्राणियों को सिद्ध परमात्मा की आत्मा अपनी परिपूर्ण निर्मलता एवं ज्ञानानंदमयी स्वरूप में लीनता के कारण एक आदर्श के समान है - जिसके ध्यान करने या लक्ष्य में लाने से हमें अपने वास्तविक शुध्द स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। इससे बहिरात्मा भी - जो शरीर को आत्मा मानकर चल रहा है - अंतरात्मा बन जाता है तथा अंतरात्मा बन अपने पुरुषार्थ से संयम का पालन करते हुए आत्माराधन कर परमात्मा बन जाता है।

इस प्रकार संसारी जनों को सिद्ध परमात्मा का ध्यान भेद विज्ञान प्रदाता होने से आत्म कल्याण करने में परम सहायक होता है। अत: मंगलाचरण में सिद्ध परमात्मा को आदर्श एवं भेद विज्ञान में सहज सहायक मंगल स्वरूप मानकर नमस्कार किया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२)

जयंति यस्यावदतो ऽपि भारती–
विभूतय स्तीर्थ कृतो ऽप्यनीहितु: ।
शिवाय धात्रे सुगताय विष्णवे –
जिनाय तस्मै सिद्धात्मने नम: ॥

धर्म प्रवर्त्तक जिसकी वाणी
निस्पृह हो सर्वांग उदार ।
परमानंदमयी होने से जिसका
होवे जय जयकार ॥
ब्रह्मा विष्णु बुद्ध शिव शंकर
जिन परमेश्वर जिन के नाम-
उस अर्हद् देवाधिदेव प्रति
बारंबार विनम्र प्रणाम ॥

भावार्थ : जिस तीर्थंकर देवाधिदेव की दिव्यवाणी मुख से बिना बोले एवं बिना किसी इच्छा के सर्वांग से प्रसूत होकर विश्व हितकारक होने से जयवंत होकर प्रवर्त्तती है उस ब्रह्मा, विष्णु, बुद्ध एवं शिवशंकर स्वरूप देवाधिदेव जिनेन्द्र देव को नमस्कार हो ।

विशेष : जिनेन्द्र देव ही मुक्ति मार्ग के आद्य प्रवर्त्तक होने से ब्रह्मा हैं तथा अपने दिव्य ज्ञान के द्वारा विश्व के समस्त पदार्थों के ज्ञाता होने से सर्व व्यापी हैं – अत: वे ही विष्णु हैं एवं संसार के समस्त प्रणियों के हितकारी उपदेशक होने से शिव या शंकर हैं और केवलज्ञानी होने से सुगत भी हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३)

ग्रंथकर्त्ता का उद्देश्य एवं प्रतिज्ञा

श्रुतेन लिंगेन यथात्म शक्ति: –
समाहितांत: करणेन सम्यक् ।
समीक्ष्य कैवल्य सुखस्पृहाणां –
विविक्त मात्मानमधामिधास्ये ॥

श्रुताभ्यास द्वारा संपादित-
सम्यग्ज्ञान प्राप्ति के द्वार ।
अंत:करण समाहित कर वर
आत्म तत्व सम्यक् निरधार ॥
जो कैवल्य सौख्य संपति के -
अभिलाषी हैं भव्य पुमान् -
उन्हें सुखद शुद्धात्म तत्व वर
दरशाता निज शक्ति प्रमाण ॥

भावार्थ : मैं (ग्रंथकर्त्ता आचार्य) मंगलाचरण करने के अनंतर जिन्हें कैवल्य स्वरूप आत्मिक सुख की अभिलाषा है उन भव्य जीवों के हितार्थ शास्त्राभ्यास तथा युक्ति अनुभानादि प्रमाणों द्वारा संपादित ज्ञान के द्वारा पर द्रव्यों से भिन्न आत्मा के शुध्द स्वरूप का यथा शक्ति प्रतिपादन करूंगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४)

आत्मा के भेद

बहिरन्त: परश्चेति त्रिधात्मा सर्व देहिषु।
उपेयात्तत्र परमं मध्योपायाद् बहिस्त्यजेत् ॥

अखिल विश्व में जीव जातियां -
समुपलब्ध हों तीन प्रकार।
बहिरातम अंतरआतम -
परमातम संज्ञाएं निरधार॥
बहिरातमता निपट हेय है -
संसृति जन्य दुखों का भूल।
अंतरात्म बन परमातमता
उपादेय है पद अनुकूल॥

भावार्थ : विश्वव्यापी सम्पूर्ण आत्माएं बहिरात्मा, अंतरात्मा एवं परमात्मा के भेद से तीन समूहों में उपलब्ध होती हैं। इन में बहिरात्मपना हेय है। अत: इसे त्यागकर अंतरात्मा बनकर परमात्मा बन जाना श्रेयस्कर है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५)

बहिरात्मा, अंतरात्मा एवं परमात्मा का स्वरूप

बहिरात्मा शरीरादौ जातात्म भ्रांतिरान्तर: ।
चित्त दोषात्म विभ्रांति: परमात्माति निर्मल: ॥

शरारादि में आत्म भ्रांति वश -
जो पीड़ित हैं चिरकालीन -
वे बहिरातम प्रतिपादित हैं -
सम्यग्दर्शन ज्ञान विहीन ॥
स्वपर भेद विज्ञान प्राप्तजन
अंतरात्म हैं सम्यग्दृष्टि ।
वर कैवल्य प्राप्त परमातम
वीतराग हैं अंतर्दृष्टि ॥

भावार्थ : जो शरीर तथा आत्मा में भेद न समझकर शरीर को ही आत्मा मान भ्रमित हैं वे बहिरात्मा हैं । जिन्हें शरीरादि पर द्रव्यों से आत्म स्वरूप की भिन्नता अनुभव में आगई है वे अंतरात्मा हैं और जिन्होंने अंतरात्मा बनकर अपने तपश्चरणादि पुरुषार्थ द्वारा आत्मा को शुध्द (निर्मल) बना लिया है वे परमात्मा हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६)

परमात्मा के प्रसिध्द नाम

निर्मल: केवल: शुद्धो विविक्त: प्रभुख्यय: ।
परमेष्ठी परात्मेति परमात्मेश्वरो जिन: ॥

परमात्मा के नाम अनेकों
अव्यय केवल निर्मल ईश ।
परमेश्वर समदृष्टि जिनेश्वर
प्रभु परमेश्वर जिन जगदीश ॥

भावार्थ : परमात्मा अनेक नामों से जाना और कहा जाता है – निर्मल, केवल, शुध्द, विविक्त (पर से भिन्न) प्रभु, अव्यय, परमेष्ठी , परमात्मा, ईश्वर, जिन, परमेश्वर आदि सब परमात्मा के ही नाम हैं ।

(७)

बहिरात्मा का स्वरूप

बहिरात्मेन्द्रियद्वारै रात्मज्ञान पराङ्मुख: ।
स्फुरित: स्वात्मनो देहमात्मत्वेना ऽ ध्यवस्यति ॥

यत: इन्द्रियों द्वार जीव को
बाह्य वस्तु का हो परिज्ञान –
अत: इन्द्रियाश्रित तन को ही
जीव मान चलता अज्ञान ॥

भावार्थ : अत: संसारी जीवों को इन्द्रियों द्वारा ही बाह्य वस्तुओं का ज्ञान होता है और इन्द्रियां शरीराश्रित रहती हैं अत: बहिरात्मा इन्द्रियाश्रित शरीर को आत्मा मान कर भ्रमित बना रहता है – उसे शरीर से भिन्न किंतु शरीर में ही व्याप्त आत्मा का अनुभव नहीं होता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८+९)

बहिरात्मा की भ्रमपूर्ण मान्याताएँ

नर देहस्थमात्मानमविद्वान् मन्यते नरम्।
तिर्यंचं तिर्यगंगस्थं सुरांगस्थं सुरं तथा ॥

नारकं नारकंगस्थं न स्वयं तत्वतस्तथा।
अनंतानंतधी शक्ति: स्व संवेद्यो अचलास्थिति: ॥

मनुज देह संस्थित निजात्म को
नर माने बहिरात्म अजान।
धारण कर तिर्यंच देह पुनि
माने हूं तिर्यंच अयान ॥
सुर माने सुरतन धारण कर
नरक वास कर नारकि मान
जब कि तत्वत: स्वसंवेद्य है
आत्म तत्व तन भिन्न महान ॥
जड़ चेतन का भेद उसे नहिं
हो पाता भ्रम बुद्ध्याधीन।
आत्मज्ञान से शून्य मूढ वह
रहता सम्यग्दृष्टि विहीन ॥

भावार्थ : शरीर को ही आत्मा मानने के कारण बहिरात्मा नर देह स्थित आत्मा को मनुष्य तथा तिर्यंच (पशु पक्षी) की देह में आत्मा को तिर्यंच, देव योनि से देव और नारकी शरीर में स्थित स्वयं को नारकी मानता रहता है। जब कि वस्तुत: वह स्वयं ज्ञानानंद स्वरूपी एवं जड़ शरीर से भिन्न है व अंतर्मुखी होकर अंतस् में झोंकने पर यदि देखें तो स्वयं को चैतन्यमयी अनुभव कर लेवे। किंतु उसे शरीर की जड़ता और स्वयं की चेतनता का भान नहीं होता अत: वह मिथ्यादृष्टि बना रहकर दुखी बना रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०)

आत्म भ्रांति का परिणाम

स्वदेह सदृशं दृष्ट्वा पर देहमचेतनम् ।
परात्माधिष्ठितं मूढ़: परत्वेनाध्यवस्यति ॥

अपनी देह समान अन्य की-
देह निरख वह तन विभ्रांत ।
पर तन को भी जीव मानकर
चलता बन मतिभ्रांत नितांत ॥

भावार्थ : वह बहिरात्मा अपने समान दूसरों की देह को भी जीव (आत्मा) मानकर भ्रमित बना रहता है । जब कि दूसरों की आत्मा भी उनकी देह से भिन्न चैतन्य स्वरूप है ।

(११)

बहिरात्मा का एक अन्य भ्रम

स्वपराध्यवसायेन देहेष्वविदितात्मनाम् ।
वर्तते विभ्रम: पुंसां पुत्र भार्यादि गोचर: ॥

तन में आत्म भ्रांति वश मूरख
भार्यादिक प्रति बन विभ्रांत ।
आत्म बुध्दि धारण कर उनमें
भी करता ममकार नितांत ॥

भावार्थ : इस प्रकार जड़ चेतन के भेद विज्ञान से शून्य वह बहिरात्मा तन मोही होने से आत्म भिन्न पुत्र कलत्रादि में भी ममता धारण कर भ्रमित होता रहता है जबकि ये सब प्रत्यक्ष ही आत्म भिन्न दिखाई दे रहे हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२)

उक्त भ्रांतियों का परिणाम

अविद्या संज्ञितस्तस्मात् संस्कारो जायते दृढ़: ।
येन लोको ऽ ङ्गमेव स्वं पुनरप्यभिमन्यते ॥

भ्रम से घोर अविद्या नामक
होता दृढ़ संस्कार मलीन ।
फल स्वरूप तन में स्वबुध्दि का
दृढ़ होता भ्रम चिरकालीन ॥

भावार्थ : स्व को पर एवं पर को स्व जानने और मानने से आत्मा में 'अविद्या' नामक संस्कार और भी दृढ़ हो जाता है । जिससे भ्रमित हुआ आत्मा इस लोक के अतिरिक्त पर लोक में भी शरीर को ही आत्मा मानता रहता है ।

(१३)

बहिरात्मा बने रहने से हानि

देहेस्वबुद्धिरात्मानं युनक्त्येतेन निश्चयात् ।
स्वात्मन्येवात्मधीस्तस्माद् वियोजयति देहिनम् ॥

तन में आत्म बुध्दि धारण कर
करे कर्म का बंध विशाल ।
अंतरात्म स्वात्मानुभूति कर
बंध मुक्त हो तज भ्रम जाल ॥

भावार्थ : इस प्रकार बहिरात्मा देह को ही आत्मा मानने की भ्रम बुध्दि से ममत्व वश अनेक दुष्कर्म करता हुआ नवीन कर्मों के बंधन में पड़ता रहता है । जबकि अंतरात्मा की देह में स्व बुद्धि दूर हो जाती है । अत: वह शरीर से मुक्त हो परमात्मा बन जाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१४)

बड़ा खेद है !

देहेष्वात्माधिया जाता: पुत्रभार्यादि कल्पना: ।
संपत्तिमात्मनस्ताभिर्मन्यते हा ! हतं जगत् ॥

तन मे आत्म बुध्दि के कारण
भार्यादिक प्रति हो ममकार ।
उन्हें मान संपत्ति आत्म की
नष्ट हुआ जग हा ! भ्रम पाल ॥

भावार्थ : शरीर में आत्म बुध्दि के कारण उससे संबंधित पुत्र भार्यादिक की कल्पनाएं होती हैं फिर उनमें ममत्व भाव के कारण उन्हीं को अपनी संपत्ति मानकर नाना कुकर्म करता हुआ खेद है कि यह जगत् नाना प्रकार से दुखी हुआ नष्ट भ्रष्ट हो रहा है ।

(१५)

हमारा कर्त्तव्य

मूलं संसार दु:खस्य देह एवात्मधीस्तत: ।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्तर्बहिराव्यापृतेन्द्रिय: ॥

सब दु:खों का मूल यही है
तन में आत्म बुध्दि सविशेष ।
भ्रम तज इंद्रिय विषय विरत बन
अंतरात्म में करो प्रवेश ॥

भावार्थ : 'शरीर ही आत्मा है' यह मान्यता ही वास्तव में संसार के सम्पूर्ण दु:खों का मूल है। अत: शारीरिक इंद्रियों के विषयों में विरक्ति पूर्वक प्रवृत्ति रोक अंतर्मुखी होकर अंतरात्मा में प्रवेश करें ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१६)

अंतरात्मा बनने पर अपनी भूल पर पश्चाताप

मत्तश्च्युत्वेन्द्रियद्वारैः पतितो विषयेष्वहम् ।
तान् प्रपद्याहमिति मां पुरा वेद न तत्वतः ॥

बन मद मत्त स्वपदच्च्युत हो रह
इन्द्रिय विषय वासना रक्त-
'मैं क्या हूं' - इसका नहि अनुभव
पूर्व हुआ था कभी सशक्त ॥

भावार्थ : बहिरात्मा अंतरात्मा बनकर विचार करता है कि मैं इस आत्मा के वास्तविक स्वरूप से च्युत होकर इन्द्रिय विषयों में प्रवृत्ति करता हुआ उन्मत्त के समान पतित हो गया था फलस्वरूप मैं क्या हूं- इस भेद को पहिले कभी नहीं जाना था।

(१७)

अंतरात्मा बन कर क्या करें ?

एवं त्यक्त्वा बहिर्वाचं त्यजेदन्तरशेषतः ।
एष योगः समासेन प्रदीपः परमात्मनः ॥

अंतर्बाह्य वाचनिक जल्पों
से समग्रतः होकर दूर -
स्वानुभूति में रत हो जाना
तज विचार मानस सब कूर।
निज स्वरूप का प्रतिभासन ही
प्रतिपादित है योग प्रवीण !
है शुद्धात्म स्वरूप विभासक
जो प्रदीप वत् ज्ञान अक्षीण ।

भावार्थ : बहिर्जल्प एवं अंतर्जल्पों (संकल्प विकल्पों) का पूर्णतया त्याग करते हुए आत्म स्वरूप की अनुभूति हो जाना ही योग कहा गया है - यही समाधितंत्र है जो परमात्म प्रकाशक दीपक के समान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१८)

अंतरात्मा के विचार

यन्मया दृश्यते रूपं तन्नजानाति सर्वथा ।
जानन् न दृश्यते रूपं ततः केन ब्रवीम्यहम् ॥

विविध रूप ये शरीरादि के
जड़ हैं अत: न जाने रंच।
जाननहारा अदृश बना है
करना किससे वचन प्रपंच ?

भावार्थ : मेरे द्वारा जो इन्द्रियों से रूपादि दिखाई देते हैं वे कुछ भी नहीं जानते और जो जानने वाला है वह दिखाई नहीं देता। अब मैं वार्तालाप किससे करूं ?

(१९)

यत्परैः प्रतिपाद्यो ऽहं यत्परान् प्रतिपादये।
उन्मत्त चेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥

अन्यजनों कर प्रतिपादित हूं
या पर का मैं करूं बखान।
सब चेष्टाएं पागलपन हैं
निर्विकल्प हूं जब कि महान॥

भावार्थ : मैं दूसरों द्वारा कथन करने योग्य हूं या दूसरों का प्रतिपादन करता हूं- ऐसे विचार सचमुच भ्रम पूर्ण होने से पागल के समान हैं, क्योंकि मैं निश्चय से वस्तुत: निर्विकल्प हूं। (स्वरूपानुभूति में रमण करने पर उक्त विकल्प निरस्त हो जाते हैं।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२०)

अंतरात्मा के विचार

यदग्राह्यं न ग्रह्णाति ग्रहीतं नापि मुञ्चति।
जानाति सर्वथा सर्वं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम्॥

यत: तत्वत: स्वसंवेद्य हूं
पर को ग्रहण करूं नहिं रंच।
निज स्वरूप जो ग्रहण किया है
उसे न त्याग करूं मैं रंच॥
अन्य वस्तुएं मेरे द्वारा
केवल जानी जाँय नितांत।
अत: ज्ञेय हैं, मैं ज्ञायक हूँ
अटल सत्य है यह निर्भ्रांत॥

भावार्थ : पर वस्तुएं जो ग्रहण करने योग्य नहीं हैं उन्हें ग्रहण नहीं करता और अपने स्वरूप को जो ग्रहण किया है उसका त्याग नहीं करता तो भी सब पदार्थों को जानता हूं, ऐसा मैं स्व संवेद्य (अपने द्वारा ही अनुभव करने योग्य) आत्मा हूँ।

(२१)

अंतरात्मा बनने के पूर्व ज्ञानी के विचार

उत्पन्न पुरुष भ्रांते: स्थाणौ यद्वद्विचेष्टितम्।
तद्वन्मे चेष्टितं पूर्वं देहादिष्वात्म विभ्रमात्॥

यथा ठूंठ को पुरुष मानकर
हो जाये मानव विभ्रांत।
त्यों शरीर में आत्म भ्रांति वश
चेष्टा कर मैं रहा अशांत॥

भावार्थ : जैसे ठूंठ (कटे हुए वृक्ष) को दूर से देखकर मनुष्य उसे मनुष्य मानकर भ्रमित हो जाता है वैसे ही देह को आत्मा समझ मैं भी भ्रमित होकर भली बुरी नाना चेष्टाएं करता रहा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२२)

अंतरात्मा बन जाने पर ज्ञानी के विचार

यथा ऽ सौ चेष्टते स्थाणौ निवृते पुरुषाग्रहे।
तथा चेष्टो ऽस्मि देहादौविनिवृत्तात्म विभ्रम: ॥

जबकि ठूंठ में पुरुष भ्रांति तज
ज्यों नर चेष्टा करे यथार्थ।
मैं भी आत्म भ्रांति तज तन में
वर्तन करता हुआ कृतार्थ ॥

भावार्थ : जैसे व्यक्ति को जब ठूंठ में पुरुष होने की भ्रांति का अभाव हो जाने पर वह उससे भयभीत नहीं होता वैसे ही मैं भी शरीर में आत्म भ्रांति के दूर हो जाने से उसके प्रति ममत्व भाव न रख यथोचित प्रवृत्ति करता हूं।

(२३)

अंतरात्मा के स्वयं के प्रति विचार

येनात्मानुभूये ऽहमात्मनैवात्मानमात्मनि।
सो ऽहं तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहु: ॥

अनुभव किया स्वयं ही निज में
निज का निज के द्वार नितांत।
अत: न मैं एक द्वय त्रय हूं
नर नारी न नपुंसक क्लांत ॥

भावार्थ : मैं अपने द्वारा अपने में स्वयं की आत्मा को जिस चैतन्य स्वरूप अनुभव कर रहा हूं वही मैं हूं।मैं न नर हूं न नारी हूं और न नपुंसक हूं। तथा न एक, दो या तीन आदि बहुत हूं। ऐसा ज्ञानी पुरुष भेद ज्ञान के द्वारा अपने संबंध में विचार करता रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२४)

मैं क्या हूं ?

यदभावे सुषुप्तो ऽहं यद् भावे व्युत्थित: पुन: ।
अतीन्द्रियमनिर्देश्यं तत्स्वसंवेद्यमस्म्यहम् ॥

जिसे न जाने मैं सुषुप्त था
जाग्रत हुआ जिसे मैं जान ।
वचनातीत अतीन्द्रिय वह मैं
स्वसंवेद्य हूँ तत्व महान ॥

भावार्थ : जिस वास्तविकता को जाने बिना मैं सो रहा था एवं जिसकी जानकारी प्राप्त कर मैं जाग्रत (सम्यग्दृष्टि) बन गया हूं मैं वही वचनातीत स्वानुभूति द्वारा अनुभवित आत्म तत्व हूं।

(२५)

आत्मानुभूति से अलौकिक लाभ

क्षीयन्ते ऽ त्रैव रागाद्यास्तत्वतो माम् प्रपश्यत: ।
बोधात्मानं तत: कश्चिन्न मे शत्रुर्न च प्रिय: ॥

हुए स्व संवेदन से मेरे
राग द्वेष मोहादि विलीन ।
मेरा शत्रु मित्र नहि कोई
ज्ञानमयी हूँ मैं भ्रमहीन ॥

भावार्थ : वास्तविक दृष्टि से अपने को ज्ञान स्वरूप देख और अनुभव कर लेने पर रागादि विकार यहीं क्षय को प्राप्त हो जाते हैं । अत: न मेरा इस लोक में कोई शत्रु है , और न कोई प्रिय मित्र है । मेरे लिये सभी जीव समान हैं । ऐसा समता भाव जाग्रत हो जाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२६)

अंतरात्मा सम्यग्दृष्टि की मान्यता

मामपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रिय: ।
मां प्रपश्यन्नयं लोको न मे शत्रुर्न च प्रिय: ॥

मम स्वरूप जाने बिन जाने
उभय दशाओं में जन अन्य ।
शत्रु मित्र होने अयोग्य है
दृश्य जगत से हूं मैं अन्य ॥

भावार्थ : मेरे शुद्ध स्वरूप की जानकारी के अभाव में कोई भी मेरा न शत्रु है और न मित्र है। तथा मेरे शुध्द स्वरूप को जानने वाला भी मेरा शत्रु मित्र नहीं हो सकता। अर्थात् जो मेरे स्वरूप से अपरिचित है वह मुझसे शत्रुता या मित्रता क्यों करेगा और जो परिचित है वह भी मुझ से न शत्रुता करेगा न मित्रता।

(२७)

अंतरात्मा का कर्त्तव्य

त्यक्त्वैवं बहिरात्मानमन्तरात्मव्यवस्थित: ।
भावयेत् परमात्मानं सर्व संकल्प वर्जितम् ॥

यों मिथ्याभिनिवेश त्यागकर
अंतरात्म बन भव्य पुमान् ।
होकर मुक्त विकल्प जाल से
करें शुध्द परमातम ध्यान ॥

भावार्थ : इस प्रकार बहिरात्म बुध्दि का परित्याग करते हुए अंतरात्मा में स्थिर हुआ ज्ञानी सम्पूर्ण संकल्प विकल्पों से रहित होकर परमात्मा का ध्यान करें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२८)

परमात्मा के ध्यान से लाभ

सो ऽ हं इत्यात्त संस्कारस्तस्मिन् भावनया पुनः।
तत्रैव दृढ़ संस्काराल्लभते ह्यात्मनि स्थितिम्॥

सो ऽ हं मंत्र सुसंस्कारित हो
वर परमात्म भावना द्वार।
तन्मय हो दृढ़ता धारणकर
आत्मलीन होता भवपार॥

भावार्थ : सो ऽहं अर्थात् मैं परमात्म स्वरूप हूं इस भावना के संस्कार से पुन: पुन: यही भावना करते हुए इसी में दृढ़ता धारणकर आत्मा आत्मस्थ हो जाता है।

(२९)

सोऽहं भावना का महत्व

मूढ़ात्मा यत्र विश्वस्तस्ततो नान्यद् भयास्पदम्।
यतो भीतस्ततो नान्यदभयास्पद मात्मनः॥

हों विश्वस्त मूढ़ पर पद में
उससे है न भयंकर अन्य।
पर पद भीत हुए जन को नहि
अभयास्पद है कोई अन्य॥

भावार्थ : जिन पर वस्तुओं (शरीर एवं परिजनादि) में सुख पाने की भावना से मूर्ख उन में रमण करता हुआ मस्त बना रहता है इससे भयंकर उसकी कोई स्थिति या पद नहीं है। तथा जो व्यक्ति अपने परमात्म स्वरूप पद में ही रमण करने से सुखी बनने की आस्था रखते हैं , उससे भिन्न कोई अभय स्थान भी नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३०)

परमात्मा क्या है ?

सर्वेन्द्रियाणि संयम्यस्स्मितेनान्तरात्मन: ।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्वं परमात्मन: ।।

सुस्थिर मन सर्वेन्द्रिय वशकर
अंतरात्म बन भव्य पुमान्।
जिस क्षण अंतस्तत्व विलोके
वही तत्व परमात्म महान।।

भावार्थ : बाह्य वस्तुओं में इन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोककर शांतचित्त से अंतर्मुखी होकर आत्मा जब अपने स्वरूप में निमग्न होता है तब उसे जो उपलब्धि होती है वही आत्मा का परमात्म स्वरूप है। जो निर्विकल्प है।

(३१)

परमात्मत्व की भावना

य: परात्मा स एवाहं योऽहं स: परमस्तत: ।
अहमेव मयोपास्यो नान्य: कश्चिदिति स्थिति: ।।

जो शुध्दात्म तत्व वह मैं हूं
मैं हूं वह परमात्म निदान।
मैं ही मम द्वारा उपास्य हूँ
अन्य उपास्य न निश्चय जान।।

भावार्थ : स्वानुभूति की इस निश्चल दशा में जो स्वरूप का अनुभव हुआ है मैं वही हूं और जो मैं हूं वही परमात्मा है, अत: मेरे द्वारा मैं ही उपास्य हूं- अन्य कोई नहीं।

अंतरात्मा में ऐसी भावना आस्था के रूप में दृढ़ हो जाती है जब वह स्वानुभव में निमग्न होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३२)

आत्मोपलब्धि होने पर ज्ञानी के विचार

प्रच्याव्य विषयेभ्योऽहं मां मयैव मयिस्थितिम् ।
बोधात्मानं प्रपन्नोऽस्मि परमानंद निर्वृतम् ॥

विषयों से च्युत हो समग्रत:
अंतस् में मेरे ही द्वार ।
ज्ञान स्वभावी निज को पाया
परमानंद मयी अविकार ॥

भावार्थ : पंचेन्द्रियों के विषयों से दूर हटकर मैं स्वयं में लीन होते हुए स्वयं को पाकर अपने ज्ञान स्वरूपी परमानंद को प्राप्त हुआ हूं। आत्मा की यही दशा स्थित प्रज्ञ दशा कहलाती है।

(३३)

स्वसंवेदनहीन तपस्वी का तप निष्फल है .

यो न वेत्ति परं देहादेवमात्मानमव्ययम् ।
लभते स न निर्वाणं तप्त्वापि परमं तप: ॥

देहादिक से भिन्न न जान्ना
जिसने आत्म स्वरूप महान ।
वह अति घोर तपस्या कर भी
पाता नहीं पावन निर्वाण ॥

भावार्थ : इस प्रकार जो साधक साधु होकर भी अपनी आत्मा को देहादिक से भिन्न अव्यय स्वरूप नहीं जानता,अनुभव नहीं करता वह घोर तपस्या कर भी निर्वाण को प्राप्त नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३४)

आत्मदेहान्तरज्ञानजनिताह्लाद निर्वृत: ।
तपसा दुष्कृतं घोरं भुञ्जानो न खिद्यते ॥

देह भिन्न स्वात्मस्वरूप के
अनुभव से आल्हादित वीर।
तप कृत घोर ताप में किंचित्
खेद खिन्न वा हो न अधीर ॥

भावार्थ : आत्मा और शरीर का भेद विज्ञानी अंतरात्मा अपने ज्ञानानंदमयी स्वरूप के अनुभव से आल्हादित होता हुआ तप करते हुए दुष्कर्मों के उदय जन्य संतापों से प्रभावित होकर खेद खिन्न नहीं होता।

(३५)

आत्म स्वरूप के अनुभव का पात्र

राग द्वेषादि कल्लोलैरलोलं यन्मनो जलम् ।
स पश्यत्यात्मनस्तत्वं स तत्वं नेतरो जन: ॥

जिसका मन रागादि तरंगों
से न तरंगित होता लेश।
वही शुध्द आत्मत्व विलोके
रागी द्वेषी न हि लवलेश ॥

भावार्थ : जिस साधक योगी का मन राग द्वेषी रूपी विकल्पों की तरंगों से तरंगित (क्षुब्ध) नहीं होता वही स्थिर चित्त से आत्मोन्मुख हो कर आत्मा के शुध्द स्वरूप का अवलोकन कर पाता है, अन्य रागी द्वेषी व्यक्ति कदापि नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३६)

आत्मा का स्वरूप

अविक्षिप्तं मनस्तत् त्वं विक्षिप्तं भ्रांतिरात्मनः ।
धारयेत्तदविक्षिप्तं विक्षिप्तं नाश्रयेत् ततः ॥

सुस्थिर चित्तात्म स्वरूप है
नहि विक्षिप्त भ्रांत सविकार ।
अतः त्याग विक्षिप्त मनस्थिति
सुस्थिर चित्त बनो अविकार ॥

भावार्थ : राग द्वेषादि विकारों से क्षोभ रहित सुस्थिर भाव मन ही आत्मा का (वीतराग) स्वरूप है, किंतु रागादि विकारों से विक्षिप्त मन भ्रांति (मिथ्यात्व) रूप विकार है, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है । अतः विक्षिप्तता का परित्याग कर क्षोभ रहित हो वीतरागता का आश्रय लेना चाहिये ।

(३७)

मन की विक्षिप्तता का कारण

अविद्याभ्यास संस्कारै रवशं क्षिप्यते मनः ।
तदेव ज्ञान संस्कारैः, स्वतस्तत्वे ऽव तिष्ठते ॥

चिरकालीन अविद्या से मन
संस्कारित हो रहा मलीन ।
वही ज्ञान से संस्कारित हो
तत्व जान होता अमलीन ॥

भावार्थ : यह मन चिरकालीन अविद्या (मोह और अज्ञान) के संस्कारों से संस्कारित होने के कारण विवश होकर राग द्वेष कर क्षुब्ध होता रहता है, किंतु यदि वह सम्यग्ज्ञान से संस्कारित हो जावे तो तत्वज्ञान के बल से क्षोभ रहित हो स्थिर और निर्मल हो जाता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३८)

मन के विक्षिप्त होने का परिणाम

अपमानादयस्तस्य विक्षेपोयस्य चेतस: ।
नापमानादयस्तस्य न क्षेपो यस्य चेतस: ॥

अपमानादिक अनुभव कर्त्ता
वही चित्त विक्षिप्त पुमान् ।
जिसका चित् विक्षिप्त नहीं वह
विचलित हो नहिं सह अपमान ॥

भावार्थ : जिसका मन राग द्वेषादि भावों द्वारा विक्षिप्त हो रहा है वही सम्मान या अपमान द्वारा क्षुब्ध होता है, किंतु जिसके मन में राग द्वेषादि विद्यमान नहीं हैं वह अपमानादि होने पर समभावी बना रहकर क्षोभ को प्राप्त नहीं होता।

(३९)

योगी को राग द्वेषादि जीतने का उपाय

यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विन: ।
तदैव भावयेत् स्वस्थमात्मानं शाम्यत: क्षणात् ॥

राग द्वेष उदित हों मन में
जब कि तपस्वी के तत्काल ।
अंतर्मुख हो आत्म विलोके
उर धारण कर साम्य विशाल ॥

भावार्थ : तपस्वियों के मन में जिस क्षण मोह वश राग द्वेषादि विकार भावों में प्रवृत्ति होने लगे उन्हें उसी समय अंतर्मुखी होकर अपने वीतराग स्वरूप का आश्रय लेकर समता भावों द्वारा उन पर विजय प्राप्त कर लेना चाहिये। राग द्वेष पर विजय पाने का यही सरल उपाय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४०)

मुनि को हितकारी निर्देश

यदा काये मुनेः प्रेम ततः प्रच्याव्यदेहिनम् ।
बुद्ध्या तदुत्तमे काये योजयेत् प्रेम नश्यति ॥

तन में प्रेम उमड़ आये यदि
तब मुनि जन मन में तत्काल ।
अंतस्तत्व विलोके जिससे
मिट जाये तन राग विशाल ॥

भावार्थ : अपनी काया के प्रति जिस क्षण मुनि को प्रेम उमड़ने लगे उसे अपने ज्ञान बल से आत्मा के शुध्द स्वरूप का ध्यान तत्काल करना चाहिये । इससे उसका अपनी काया के प्रति उमड़ता प्रेम तत्काल विलीन हो जायेगा ।

(४१)

शरीरादि में भ्रम जन्य राग के नाश करने का उपाय

आत्म विभ्रमजं दुःखं आत्म ज्ञानात्प्रशाम्यति ।
नायताः तत्र निर्वान्ति कृत्वापि परमं तपः ॥

स्वात्म ज्ञान से ही विनष्ट हों
भ्रांति जन्य दुख दैन्य समस्त ।
तपकर भी नहि मुक्ति लाभ हो
देह राग में रह कर व्यस्त ॥

भावार्थ : आत्मा के यथार्थ ज्ञान से देह में आत्म भ्रांति जन्य दुख दूर हो जाता है, किंतु देह को ही आत्मा मानने वाले या उससे राग करने वाले भ्रांत जन परम तप कर भी निर्वाण को प्राप्त नहीं होते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४२)

तन मोही बहिरात्मा ही विषयों की चाह करता है .

शुभं शरीरं दिव्यांश्च विषयानभिवांछति।
उत्पन्नात्ममतिर्देहे तत्वज्ञानी ततश्च्युतिम्॥

तन प्रेमी ही विषय पूर्ति हित
मनसा चाहे दिव्य शरीर।
किंतु विरागी रहकर ज्ञानी
सदा स्वस्थ बन रहते धीर॥

भावार्थ : जिसे देह को ही आत्मा मानने का भ्रम बना हुआ है वही शरीराश्रित इन्द्रियों के विषयों की पूर्ति करने के लिये सुन्दर शरीर और मनोवांछित विषयों की चाह करता है, किंतु जिसे भेद ज्ञान पूर्वक आत्म स्वरूप का अनुभव है वह विषय विरक्त रहकर सदा स्वस्थ ही बन कर रहता है।

(४३)

कर्म बंध कौन करता है ?

परत्राहम्मति: स्वस्माच्च्युतो बध्नात्यसंशयम्।
स्वस्मिन्नहं मतिश्च्युत्वा परस्मान्मुच्यते बुध:॥

पर में अहं बुद्धि कर्त्ता ही
निश्चित हो बंधन को प्राप्त।
पर में अहं बुद्धि तज ज्ञानी
करता सहज मुक्ति संप्राप्त॥

भावार्थ : जिसे पर पदार्थों में अहंकार- ममकार रहा करता है वही आत्म ज्ञान शून्य व्यक्ति नि:संशय कर्म बंध करता है, किंतु शरीरादि में अहं बुध्दि त्यागी बुध्दिमान बंधन से मुक्त हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४४)

बहिरात्मा शरीर के तीन लिंगों को अपने लिंग मानता है.

दृश्यमानमिदं मूढ़स्त्रिलिंगमव बुध्यते।
इदमित्येव बुद्धस्तु निष्पन्नं शब्द वर्जितम्॥

तन में तीन लिंग लख उनको
अपने मान चले अज्ञान।
लिंग भेद नहि किंतु स्वात्म के
माना करता जन सज्ञान॥

भावार्थ : मूर्ख बहिरात्मा शरीर के स्त्री,पुरुष और नपुंसक लिंगों को मोह वश स्वयं के माना करता है कि मैं स्त्री हूं, पुरुष हूं या नपुंसक हूं, किंतु अंतरात्मा ज्ञानी आत्मा को अनादि स्वयं सिद्ध ज्ञानमयी चैतन्य स्वरूपी अनिर्वचनीय अनुभव करता है- स्त्री,पुरुष या नपुंसक नहीं मानता।

(४५)

कभी कभी अंतरात्मा भी भ्रमित हो जाता है

जानन्नप्यात्मनस्तत्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्व विभ्रम संस्कारात् भ्रांतिं भूयोऽपि गच्छति॥

आत्म तत्व पर द्रव्य भाव से
भिन्न जानता भी मतिमान्।
पूर्व मोह संस्कार विवश हो
क्वचित् भ्रमित होता भ्रम ठान॥

भावार्थ : अंतरात्मा ज्ञानी जन भी आत्मा को पर द्रव्यों से भिन्न जानता हुआ भी मोह जन्य पूर्व संस्कारों की वासना से विवश होकर कभी- कभी पुनः भ्रमित हो जाता है - जब कि उसे तीव्र मोह कर्म (मिथ्यात्वादि) का उदय आता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४६)

अंतरात्मा क्या विचारता है ?

अचेतनमिदं दृश्यं अदृश्यं चेतनं तत: ।
क्व रुष्यामि क्व तुष्यामि मध्यस्थो ऽहं भवाम्यत: ।।

तन धन दृश्य वस्तुएं जड़ हैं
हैं अदृश्य मम आतमराम ।
राग द्वेष क्यों करूं किसी से
बन मध्यस्थ रहूं निष्काम ।।

भावार्थ : अंतरात्मा विचार करता है कि यह दृश्य जगत अचेतन है और मैं चैतन्य स्वरूप हूं । अत: मैं अब किससे रुष्ट होऊं और किससे प्रसन्न ? मुझे मध्यस्थ बन कर रहना ही श्रेयस्कर है ।

(४७)

कौन क्या करता है ?

त्यागादाने बहिर्मूढ़: करोत्यध्यात्ममात्मवित् ।
नान्तर्बहिरुपादानं न त्यागो निष्ठितात्मन: ।।

त्याग विसर्जन बाह्य वस्तु का
करें मूढ़ जन मोहाधीन ।
अन्तस् राग द्वेष तज ज्ञानी
त्याग ग्रहण नहि करें प्रवीण ।।

भावार्थ : बहिरात्मा मूढ़ प्राणी मोह वश सुख प्राप्ति की अभिलाषा एवं भावना से बाह्य वस्तु को इष्ट मान ग्रहण करता व अनिष्ट का त्याग करता रहता है – किंतु आत्म स्वरूप का ज्ञानी बाह्य वस्तुओं को सुख या दुखदायंक न मान कर न तो उन्हें इष्ट मान ग्रहण करता है और न अनिष्ट मान कर त्याग करता है । वह बाह्य वस्तुओं प्रति समभावी बना रहता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४८)

अंतरात्मा क्या करे ?

युञ्जीत मनसाऽऽत्मानं वाक्कायाभ्यां वियोजयेत् ।
मनसा व्यवहारं तु त्यजेद्वाक्काययोजितम् ॥

वचन काय से चित्त विमुख कर
अंतस् में जोड़े मतिमान् ।
वचन काय कृत व्यवहारों को
भी तज करें आत्म का ध्यान ॥

भावार्थ : अंतरात्मा को चाहिये कि वह अपने मन को आत्मा के ध्यान में लगावे और वचन एवं काया से चित्त को हटा कर उनके व्यवहार पर भी ध्यान न देकर आत्मोन्मुख बना रहे ।

(४९)

बहिरात्मा एवं अंतरात्मा में दृष्टि भेद

जगद्देहात्मदृष्टीनां विश्वास्यं रम्यमेव वा ।
स्वात्मन्येवदृष्टीनां क्व विश्वासः क्व वा रतिः ?

हैं देहात्म बुद्धियां जिनकी
उन्हें जगत दिखता अति रम्य ।
आत्म दर्शी को प्रतिभासित हो
नहि विश्वास्य जगत या रम्य ॥

भावार्थ : जो व्यक्ति देह को ही आत्मा मानता है उसे जगत के पदार्थ विश्वास करने योग्य, सुखदायी एवं रम्य प्रतीत होते हैं, किंतु आत्म दर्शी ज्ञानी अंतरात्मा इन आत्म भिन्न पदार्थों को रम्य मानकर उन पर कैसे विश्वास करेगा ? अर्थात् नहीं करेगा ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५०)

अंतरात्मा का कर्त्तव्य

आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम् ।
कुर्यादर्थवशात् किंचित् वाक्कायाभ्यामतत्परः ॥

आत्म ज्ञान से भिन्न कार्य में
ज्ञानी रुचि न करे भ्रम पाल ।
किंतु प्रयोजन वश करता है
किंचित् वाक्काय व्यवहार ॥

भावार्थ : अंतरात्मा ज्ञानी का कर्त्तव्य है कि वह आत्म ज्ञान और चिंतन के अतिरिक्त पर पदार्थों के चिंतन मनन में अपनी बुध्दि का बहुत समय तक उपयोग न करे, किंतु यदि वचन से या काया से प्रयोजन वश कुछ व्यवहार करना पड़े तो करते हुए उसे उदासीन भाव से करे ।रुचि पूर्वक न करे ।

(५१)

आत्मज्ञानी विचार करता है

यत्पश्यामीन्द्रियैः तन्मे नास्ति यन्नियतेन्द्रियः ।
अंतः पश्यामि सानंदं तदस्तु ज्योतिरुत्तमम् ॥

जो भी इन्द्रिय द्वार दिख रहा
सचमुच वह सब है पर रूप ।
अंतर्दृष्ट ज्ञान ज्योतिर्मय
हूं मैं परमानंद स्वरूप ॥

भावार्थ : ज्ञानी विचार करता है कि इन्द्रियों द्वारा मैं जिन पदार्थों को जानता देखता हूं वे मेरे नहीं हैं तथा आत्मा को जिस ज्ञान नेत्र से मैं देखता हूं वही मैं हूं और वही मेरा है (अर्थात्- आत्म भिन्न सभी पदार्थों से मुझे ममकार या अहंकार नहीं करना है ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५२)

एक साधारण नियम

सुखमारब्ध योगस्य बहिर्दु:खमथात्मनि ।
बहिरेवासुखं सौख्यमध्यात्मं भावितात्मन: ॥

योगाभ्यासी जन को प्रथम हि
बाह्य विषय में हो सुख भ्रांति ।
आत्म दृष्ट बन वही स्वयं के
सुख स्वरूप में पाता शांति ॥

भावार्थ : योग के अभ्यासी जन को प्रारम्भिक दशा में बाह्य पदार्थों में सुख एवं आत्मलीनता में दुख का आभास हुआ करता है, किंतु अध्यात्म निरत हो जाने पर आत्मलीनता में ही सुख एवं बाह्य पदार्थों के आश्रय में दु:ख का अनुभव होने लगता है ।

(५३)

आत्मशुध्दि का अभिलाषी क्या करे ?

तद् ब्रूयात् तत्परान् पृच्छेत्तदिच्छेत् तत्परोभवेत् ।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं ब्रजेत् ॥

वही कहे पूछे वा इच्छे
हो जाये उसमें ही लीन ।
जिससे आत्म ज्ञान विकसित हो
मिटे अविद्या चिरकालीन ॥

भावार्थ : सुखार्थियों तथा आत्म शुध्दि के इच्छुक व्यक्तियों को चाहिये कि वे वही कहें या दूसरों से पूछें अथवा अपने मन में इच्छा करें तथा उस ही में तत्पर रहें जिससे कि अपनी अविद्या (अज्ञान) मयी दशा का नाश होकर सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति हो जाये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५४)

भ्रांत और अभ्रांत जन की प्रवृत्ति में अंतर

शरीरवाचि चात्मानं संधत्ते वाक् शरीरयो: ।
भ्रांतो ऽ भ्रांत: पुनस्तत्वं पृथगेषां विबुध्यते ॥

बहिरातम वाणी काया में
आत्म कल्पना कर हो भ्रांत ।
अंतरात्म पृथगहि अनुभव कर
आत्म दृष्ट रहता निर्भ्रांत ॥

भावार्थ : बहिरात्मा वाणी और शरीर को आत्मा मानकर भ्रांत बना रहता है जब कि अंतरात्मा शरीरादि को आत्मा से भिन्न मानता हुआ भ्रमित नहीं होता ।

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
प्र. क्र. सं. 4476
(नारिया) वाराणसी

(५५)

वास्तविकता क्या है ?

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत् क्षेमंकरमात्मन: ।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञान भावनात् ॥

इन्द्रिय विषयों में न तनिक भी
है सन्निहित आत्म कल्याण ।
फिर भी मूढ़ भ्रमित हो उनमें
ही रमता रहता सुख मान ।.

भावार्थ : इन्द्रियों के विषयों में ऐसा एक भी नहीं है जो आत्मा का कल्याण कर सके । फिर भी अज्ञानी जीव मिथ्या भ्रांति के कारण उन विषयों में रमता रहता है जिनमें अनादि काल से रमते हुए अभी तक भी सुख प्राप्त नहीं हुआ ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५६)

मूढ़ जनों की दुर्दशा का कारण

चिरं सुषुप्तास्तमसि मूढात्मान: कुयोनिषु .
अनात्मीयात्म भूतेषु ममाहमिति जाग्रति ॥

कुयोनियों में भ्रम सुषुप्त जन
आत्म ज्ञान बिन मोहाधीन।
पर द्रव्यों में अहं भाव धर
रहता रहा वासना लीन ॥

भावार्थ : मोहांधकार में निमग्न यह अज्ञानी प्राणी अनादि काल से ही आत्म स्वरूप को भूला हुआ मोह निद्रा में शयन कर रहा है। तथा आत्म भिन्न पर पदार्थों में अहं भाव धारण कर जाग भी रहा है।

(५७)

आत्म तत्व का ज्ञाता क्या करे ?

पश्येन्निरंतरं देहमात्मनोऽनात्म चेतसा।
अपरात्मधिया ऽन्येषां आत्मतत्व व्यवस्थित: ॥

देह भिन्न है मम स्वरूप से
विज्ञ अनुभवें सतत नितांत।
पर की देहों से उनका भी
आत्म भिन्न देखे निर्भ्रांत ॥

भावार्थ : आत्म तत्व का यथार्थ ज्ञानी आत्मा से देह को निरंतर भिन्न ही देखता रहे। उसी प्रकार दूसरों की आत्मा को भी उनकी देहों से भिन्न ही माने। अर्थात् शरीर आत्मा से भिन्न है ऐसी बुध्दि अंतरात्मा की सदा बनी रहनी चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५८)

मूढ़ जनों को ज्ञान देने के विकल्प की निरर्थकता

अज्ञापितं न जानन्ति यथा माम् ज्ञापितं तथा।
मूढ़ात्मानस्ततस्तेषां वृथा मे ज्ञापन श्रमः ॥

ज्ञान कराये बिना न होता
मूढ़ जनों को मम परिज्ञान।
त्यों ही ज्ञान कराने पर भी
अतः व्यर्थ ज्ञापन श्रम जान॥

भावार्थ : मूढ़ जन जैसे बिना ज्ञान कराये मेरी आत्मा के स्वरूप को नहीं जानते वैसे ही ज्ञान कराने (समझाने)पर भी नहीं जानते। अतः उनके प्रति ज्ञान कराने(समझाने) का प्रयास व्यर्थ ही है।

(५९)

पुनः

यद् बोधयितुं इच्छामि तन्नाहं यदहं पुनः।
ग्राह्यं तदपि नान्यस्य तत्किं अन्यस्य बोधये॥

पर बोधन की इच्छा करता
किंतु न मैं पर हूं सज्ञान।
पर से भी नहिं ग्राह्य अतः
पर बोधन श्रम है व्यर्थ समान॥

भावार्थ : मैं जिस पर को समझाने की इच्छा करता हूं वह मैं नहीं हूं और जो मैं हूं वह अन्य के द्वारा ग्राह्य नहीं है। अतः दूसरों को समझाने से क्या लाभ ?

योगी जन स्वयं निर्विकल्प दशा को प्राप्त होने तथा निर्विकल्प बने रहने के लिये उक्त विकल्पों से दूर रहने के लिये ऐसे विचार किया करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६०)

ज्ञानी एवं अज्ञानी की रुचि में अंतर

बहिस्तुष्यति मूढ़ात्मा पिहित ज्योतिरान्तरे।
तुष्यत्यन्त: प्रबुद्धात्मा बहिर्व्यावृत्यकौतुक: ।।

अंतर्दृष्टि विहीन मूढ़ जन
बाह्य वस्तु पा हो संतुष्ट।
बाह्य वस्तु में कौतुकता तज
अंतरात्म हो निज में पुष्ट।

भावार्थ : आत्म स्वरूप को न जानने वाला शरीराश्रित बहिरात्मा तन धनादि पाकर संतुष्ट बना रहता है, किंतु आत्म ज्ञान संपन्न अंतरात्मा आत्म भिन्न बाह्य पदार्थों के भोगने में रुचि न रखने के कारण स्वयं के ज्ञानानंदमयी होने से अपने गुणों से ही संतुष्ट रहता है।.

(६१)

मूढ़ जनों की प्रवृत्तियां

न जानन्ति शरीराणि सुख दु:खान्यबुद्धय:।
निग्रहानुग्रहधियं तथाप्यत्रैव कुर्वते ।।

सुख दुखादि नहि अनुभव करता
जड़ शरीर चैतन्य विहीन ।
फिर भी मूढ़ उसी में करता
निग्रहादि की बुद्धि मलीन ।।

भावार्थ : यद्यपि जड़ शरीर सुख दुखादि का अनुभव नहीं करता तथापि बहिरात्मा इस शरीर में ही उपकार या अनुपकार की बुध्दि के कारण उसी की सेवा में लगे रहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६२)

आत्मा का संसार में परिभ्रमण कब तक ?

स्व बुद्धया यावद् ग्रह्णीयात् कायवाक् चेतसांत्रयम् .
संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निवृतिः ॥

जब तक मन वच तन में रहती
आत्म बुध्दियां जन में भ्रांत।
तावत् संसारी ही रहता
भेद ज्ञान से मुक्ति नितांत ॥

भावार्थ : यह जीव जब तक मन वचन और काया को अपना मान कर रहता है - आत्मा से इन्हें भिन्न अनुभव नहीं करता तब तक संसार में ही परिभ्रमण करता रहता है। भेद ज्ञान होने पर ही मुक्ति प्राप्त कर पाता है।

(६३)

शरीरादि के संबंध में अंतरात्मा की मान्यता

घने वस्त्रे यथात्मानं न घनं मन्यते तथा।
घने स्वदेहे ऽप्यात्मानं न घनं मन्यते बुधः ॥

स्थूल वस्त्र धारण कर बुध जन
ज्यों न स्वयं को माने थूल।
स्थूल देह धारण कर ज्ञानी
भी न स्वयं को माने थूल ॥

भावार्थ : जैसे मोटा वस्त्र धारण करने से विज्ञ जन स्वयं को मोटा (स्थूल) नहीं मानते वैसे ही ज्ञानी अंतरात्मा भी मोटा शरीर पाकर स्वयं को (आत्मा को) मोटा नहीं माना करते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६४)

उसी श्रृंखला में

जीर्णे वस्त्रे यथात्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहेप्यात्मानं न जीर्णं मन्यते बुधः ॥

जीर्ण वस्त्र होने पर जैसे
जीर्ण न माने निज को बुद्ध।
त्यों तन जीर्ण दशा होने पर
आत्म न माने जीर्ण प्रबुद्ध॥

भावार्थ : जैसे वस्त्र के जीर्ण (पुराना) हो जाने पर स्वयं को जीर्ण नहीं माना जाता वैसे ही शरीर की जीर्णता में आत्मा को ज्ञानी जर्जर (जीर्ण) नहीं मानता।

(६५)

एक और दृष्टांत

नष्टे वस्त्रे यथात्मानं न नष्टं मन्यते तथा।
नष्टे स्व देहेप्यात्मानं न नष्टं मन्यते बुधः ॥

गल जाने पर वस्त्र न माने
बुध जन हुआ स्वयं मैं नष्ट।
त्यों शरीर के गल जाने पर
बुध न स्वयं को माने नष्ट ॥

भावार्थ : जैसे वस्त्र के गल या फट जाने पर स्वयं को नष्ट हुआ नहीं माना जाता वैसे ही शरीर के गल जाने पर ज्ञानी को भी नष्ट हुआ नहीं मानता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६६)
दूसरा दृष्टांत

रक्ते वस्त्रे यथात्मानं न रक्तं मन्यते तथा ।
रक्ते स्वदेहे ऽप्यात्मानं न रक्तं मन्यते बुधः ॥

रक्त वस्त्र धारण कर जन नहिं
रक्त स्वयं को चलता मान ।
रक्तादिक तन पा सुदृष्टि भी
निज को रक्त न चलता मान ॥

भावार्थ: जैसे लाल पीले आदि वस्त्र धारण कर समझदार स्वयं को लाल पीला नहीं मानता वैसे ही शरीर के लाल पीले रंगवाला होने से ज्ञानी भी स्वयं को काला गोरा लाल आदि नहीं मानता। शरीर के रूप आत्मा के नहीं होते।

(६७)
मानव वीतरागता को कब प्राप्त होता है ?

यस्य सस्पंदमाभाति निःस्पन्देन समं जगत् ।
अप्रज्ञमक्रियाभोगं स शमं याति नेतरः ॥

जिस ज्ञानी को सक्रिय निष्क्रिय
प्रतिभासित हो वस्तु समान ।
ज्ञेय तथा उपभोग्य भी न, वह
शम सुख पाता व्यक्ति महान ॥
इष्टानिष्ट कल्पना करता
विषयों में जो मोहाधीन ।
वह यथार्थ सुख शांति प्राप्ति का
पात्र न बन पाये जन दीन ॥

भावार्थ : जिस अंतरात्मा ज्ञानी को जगत के सक्रिय एवं निष्क्रिय पदार्थों में समता भाव प्राप्त हैं तथा उन्हें ज्ञेय और उपभोग्य मानने का भ्रम भी मिट जाता है वही शम(शांति या वीतरागता) को प्राप्त कर सुखी बन पाता है-किंतु जिनकी विषय भोगों में इष्टानिष्ट कल्पना बनी हुई है वह उन्हीं में रत रह कर आत्मा के आकुल व्याकुल बने रहने से सदा दुखी ही बना रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६८)

मोही जन को आत्मा का यथार्थ ज्ञान क्यों नहीं होता ?

शरीर कंचुकेनात्मा संवृत ज्ञान विग्रह: ।
नात्मानं बुध्यते तस्माद् भ्रमत्यचिरं भवे ॥

है शरीर केंचुल से संवृत
आत्म हमारा ज्ञान स्वरूप ।
यत: न हो अंतस् प्रतिभासन
अत: करे भव भ्रमण विरूप ॥

भावार्थ : यह ज्ञान शरीरी आत्मा शरीर रूपी केंचुल (कांचली) से संसार में ढका हुआ है इसलिये इस रहस्य को न जानने वाला बहिरात्मा दिखने वाले शरीर को ही आत्मा मानकर भ्रमित होता रहता है।

(६९)

बहिरात्मा आत्मा को कैसा मानता है ?

प्रविशद् गलितांव्यूहे देहे ऽणूनां समाकृतौ ।
स्थिति भ्रान्त्या प्रपद्यन्ते तमात्मानमबुद्धय: ॥

पुद्गलाणु के पिंड देह में
सतत व्याप्त हो करें प्रवेश।
यों संकीर्ण देह सुस्थितिलख
आत्म भ्रांति होती सविशेष ॥

भावार्थ : जिसमें पुद्गल के परमाणु समूह निरंतर प्रवेश करते और निकलते रहते हैं ऐसी पुद्गलाणुओं के पिंड स्वरूप देह में एक क्षेत्रावगाही होकर आत्मा व्याप रहा है। इस एकत्र स्थिति के कारण शरीर व आत्मा को एक मानने का भ्रम अज्ञानियों को हुआ करता है। भेद ज्ञान का अभाव होना ही इसका कारण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७०)

अंतरात्मा विचार करे

गौर: स्थूल: कृशो वाऽहमित्यंगेना विशेषयन्।
आत्मानं धारयेन्नित्यं केवलज्ञप्ति विग्रहम् ॥

गौर कृष्ण कृश आदि न मैं हूं
ये सब शारीरिक परिवेश।
हूं मैं ज्ञान शरीरी केवल
यही धारणा मिटे न लेश॥

भावार्थ : मुमुक्षु को चाहिये कि वह जड़ शरीर के काले गौरे रूप या कृश स्थूलादि अवस्थाओं को अपनी आत्मा की न मानकर स्वयं को केवलज्ञान शरीरी अनुभव करें - जैसा कि वह वास्तव में है।

(७१)

मुक्ति का पात्र कौन ?

मुक्तिरेकांतिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृति:।
तस्य नैकांतिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृति: ॥

आत्म धारणा जिसकी दृढ़ है
निश्चित वही मुक्ति का पात्र।
अटल धारणा बिना न कोई
होता मुक्ति रमा का पात्र॥

भावार्थ : जिसकी शरीर के रूपादि से रहित अपनी ज्ञान स्वरूप आत्मा होने की धारणा दृढ़ हो गई है वह अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त होगा, किंतु आत्मा के यथार्थ स्वरूप की अवधारणा किये बिना कोई भी आत्मानुभूति शून्य शारीरिक मोही व्यक्ति कभी भी मुक्ति का पात्र न हो सकेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७२)

चित्त की स्थिरता के लिये क्या करे ?

जनेभ्यो वाक् तत: स्पंदो मनसश्चित्त विभ्रमा: ।
भवन्ति तस्मात् संसर्ग जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥

जन संपर्क किये वार्ता हो
तब होता चित्त भ्रमित महान् ।
लौकिक जन संपर्क न करते
अत: योगि जन निजहित मान ॥

भावार्थ : अन्य जनों के संपर्क से विविध प्रकार की वार्ताएं हुआ करती हैं । इससे मन चञ्चल होता है और उससे फिर आत्मा भी भ्रमित होने लगता है।अत: योगी जन संपर्क का त्याग करें।

(७३)

योगी कहां निवास करते हैं ?

ग्रामोऽरण्यमिति द्वेधा निवासो ऽनात्मदर्शिनाम् ।
दृष्टात्मनां निवासस्तु विविक्तात्मैव निश्चल: ॥

वन में या ग्रामों में होता
नित अनात्म दर्शी का वास ।
किंतु आत्म दर्शी निश्चयत:
निज स्वरूप में करें निवास ॥

भावार्थ : जिन्हें आत्म स्वरूप के शुद्ध रूप में दर्शन नहीं हुए वे ही वन या ग्राम में – यह वन है यह ग्राम है ऐसा विकल्प करते हुए वहां निवास करते हैं, किंतु आत्मदर्शी अंतरात्मा योगी सदा आत्मा में निवास कर आत्मा में ही रमण करते हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७४)

जन्म मरण करने का बीज

देहान्तरगतेर्बीजं देहेस्मिन्नात्मभावना ।
बीजं विदेह निष्पत्तेरात्मन्येवात्म भावना ॥

है स्वदेह में आत्म भ्रांति ही
भव धारण का बीज निदान ।
निज स्वरूप में आत्म धारणा
ही विदेह का बीज महान् ॥

भावार्थ : जड़ शरीर को ही आत्मा मानने की भ्रम पूर्ण भावना ही संसार परिभ्रमण करने का बीज है, क्योंकि वह भ्रमित प्राणी शरीर और इन्द्रियों के भोगों में ही सुख मान नाना कुकर्म (उनकी पूर्ति हेतु) करता रहकर कर्म बंध करता रहता है । तथा आत्मा में आत्मत्व होने की भावना ही शरीर से ममत्व हट जाने से विदेह (मुक्त) होने का कारण है ।

(७५)

वस्तुत: आत्मा ही आत्मा का गुरू है

नयत्यात्मानमात्मैव जन्म निर्वाण मेव च ।
गुरूरात्मात्मनस्तस्माद् नान्यो ऽस्ति परमार्थत: ॥

आत्म स्वयं ही है भव कारण
और वही कारण निर्वाण ।
गुरू अतएव आत्म है अपना
निश्चयत: गुरू अन्य न जान ॥

भावार्थ : यह आत्मा ही अपने ज्ञान के अभाव एवं दुर्बुध्दि के कारण कर्म बंध करता हुआ जन्म मरण के दु:ख उठाता है और वही सद्बुध्दि द्वारा ज्ञानी बन कर तपस्यादि का पुरुषार्थ कर निर्वाण को प्राप्त होता है, अत: आत्मा ही अपना निश्चय से गुरु है । (व्यवहार में अन्य गुरु का उपदेश निमित्त मात्र होता है ।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७६)

मृत्यु भयभीत कौन होता है ?

दृढ़ात्मबुध्दिर्देहादौ उत्पश्यन्नाशत्मात्मनः ।
मित्रादि भिर्वियोगं च विभेति मरणाद् भृशम् ।।

भ्रमित जीव तन में स्व बुध्दिवश
अपना माने नाशोत्पाद ।
मित्रादिक वियोग से भयकर
मरणभीत हो करे विषाद ।।

भावार्थ : जो शरीर को ही आत्मा मान रहा है और जिसे आत्म स्वरूप का यथार्थ ज्ञान नहीं है वह शरीर की उत्पत्ति को अपनी उत्पत्ति एवं शरीर के नाश को अपना नाश मानने के कारण मृत्यु से भयभीत रहा करता है और मित्रादि के वियोग की कल्पना कर घबराता रहता है ।

(७७)

मरण विषय में अंतरात्मा के विचार

आत्मन्येवात्मधीरन्यां शरीर गतिमात्मनः ।
मन्यते निर्भयं त्यक्त्वा वस्त्रं वस्त्रांतर ग्रहम् ।।

अंतरात्म शारीरिक गतियाँ
आत्म भिन्न माने मतिमान् ।
निर्भय रहकर मरण मानता
वस्त्रांतर परिवर्त समान ।।

भावार्थ : जैसे व्यक्ति मलिन वस्त्र का परित्याग कर नवीन वस्त्र धारण करता है वैसे ही आत्मा नश्वर देह को त्यागकर नवीन शरीर धारण करता है वह शारीरिक गतियों को आत्मा से भिन्न मान कर मरग से भयभीत नहीं होता ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७८)

कौन जाग्रत एवं कौन सुषुप्त है ?

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्म गोचरे।
जागर्ति व्यवहारे ऽस्मिन् सुषुप्ताश्चात्मगोचरे॥

हो व्यवहार सुप्त वह करता
आत्म जागरण जन उस काल।
जो व्यवहार निरत रहता वह
आत्म सुप्त रहता उस काल॥

भावार्थ : जो व्यावहारिक कार्यों के प्रति उदासीन होकर सोता है अर्थात् उनमें रुचि नहिं लेता वह आत्मानुभव करता हुआ आत्म कल्याण करने के प्रति जाग्रत रहता है और जो व्यवहार में रुचि पूर्वक प्रवृत्ति कररहा है वह आत्मानुभूति प्रति सुप्त है। क्योंकि उपयोग एक समय में एक ही कार्य में लग पाता है।

(७९)

आत्मानुभवी ही मुक्ति प्राप्त करता है

आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः।
तयोरन्तर विज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत्॥

जो तन भिन्न आत्म अवलोके
अंतरात्म बन भव्य पुमान्।
वही भेद ज्ञानी जन भव से
पाता निश्चित मुक्ति महान्॥

भावार्थ : जो भव्यात्मा शरीरादि बाह्य पदार्थों को आत्मा से भिन्न देखता हुआ अंतर्मुखी होकर आत्मा को देख कर इन दोनों में पृथक्त्व का अनुभव कर लेता है वह भेद विज्ञान के अभ्यास से एक समय मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

जैसे अंधकार को देखे बिना प्रकाश की महत्ता का अनुभव नहीं होता वैसे ही शरीर आत्मा में भेद विज्ञान के हुए बिना आत्मा की स्वतंत्रता एवं वास्तविकता का महत्व भी नहीं जाना जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८०)

आत्मदर्शी के अनुभव की विशेषता

पूर्वं दृष्टात्मतत्वस्य विभात्युन्मत्तवत् ज़गत् ।
स्वभ्यस्तात्मधिय. पश्चात् काष्ठ पाषाणरूपवत् ॥

आत्म दृष्ट को प्रथम हि दिखता
सकल जगत उन्मत्त समान ।
आत्माभ्यस्त पुन: अवलोके
जगत काष्ठ पाषाण समान ॥

भावार्थ : आत्मदर्शी को योगाभ्यास की प्रथम भूमिका में यह विश्व उन्मत्त (पागल) के समान चेष्टाएं करता हुआ प्रतीत होता है, किंतु योगाभ्यास में निपुण हो जाने (आत्मज्ञानी बन जाने) पर यह जगत काष्ठ पाषाण के समान अपने -अपने स्वरूप में मग्न प्रतिभासित होने लगता है।

(८१)

आत्मानुभव शून्य मुक्ति का पात्र नहीं है

शृण्वन्नप्यन्यत: कामं वदन्नपि कलेवरात् ।
नात्मानं भावयेत् भिन्नं यावत्तावन्न मोक्ष भाक् ॥

श्रवणों से सुन आत्म भिन्नता
मुख से देकर भी उपदेश ।
यावत् जन तन भिन्न न अनुभव
करता तावत् मुक्ति न लेश ॥

भावार्थ : आत्मा शरीरादि से भिन्न है- ऐसा गुरू मुख से उपदेश सुन कर तथा यही दूसरों को उपदेश देते हुए भी जब तक शरीर से भिन्न आत्मा का अनुभव नहीं हो जाता तब तक आत्मा को मुक्ति प्राप्त नहीं होती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८२)

आत्माभ्यासी को उस में दृढ़ होने की प्रेरणा

तथैव भावयेद् देहाद् व्यावृत्यात्मानमात्मनि ।
यथा न पुनरात्मानं देहे स्वप्नेऽपि योजयोत् ॥

ऐसी दृढ़तम करै भावना
देह भिन्न है आत्म स्वरूप ।
हो न स्वप्न में भी यह अनुभव
देह हि है बस मेरा रूप ॥

भावार्थ :शरीर से भिन्न आत्म स्वरूप का अनुभव हो जाने पर साधक आत्मा के शुध्द स्वरूप की भावना को दृढ़ता के साथ इतना पुष्ट करे कि जिससे उसे फिर स्वप्न में भी देह में आत्मीयता का प्रतिभास न होने पावे ।

(८३)

स्वरूपलीनता में व्रत अव्रत का विकल्प भी नहीं होता ।

अपुण्यमव्रतैः पुण्यं व्रतैर्मोक्षस्तयोर्व्ययः ।
अव्रतानीव मोक्षार्थी व्रतान्यपि ततस्त्यजेत् ॥

अव्रत पाप वा विरति पुण्य है
उभय विरत हो योगि महान् ।
अव्रत समान विरति रति तजकर
निर्विकल्प बन करै स्वध्यान ॥

भावार्थ : अव्रत दशा में पाप और व्रत पालन से पुण्य होता है किंतु पुण्य पाप के विकल्पों से रहित होकर निर्विकल्प दशा प्राप्त होने पर आत्म ध्यान करने से मोक्ष होता है , अतः मुमुक्ष को पुण्य-पाप के उभय विकल्पों का त्याग कर शुद्धोपयोगमयी निर्विकल्प दशा को धारण कर लेना ही श्रेयस्कर है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८४)

पाप पुण्य का त्याग किस क्रम से करना चाहिये ?

अव्रतानि परित्यज्य व्रतेषु परिनिष्ठितः ।
त्यजेत् तान्यपि सम्प्राप्य परमंपदमात्मनः ।।

पाप प्रथम तज व्रत धारण कर
साधु बने व्रत निष्ठावान् ।
तत्पश्चात् परम पद थिर बन
नहीं रखे व्रत का भी ध्यान ।।

भावार्थ : साधक को चाहिये कि वह सर्वप्रथम पाप कार्यों का त्याग करे तथा व्रतों को धारण कर उनका निष्ठा पूर्वक पालन करे। व्रतों का पालन करते हुए वीतरागता की ओर अग्रसर होवे एवं वीतरागता धारण कर फिर व्रतों के पालन करने का भी विकल्प न करे। तात्पर्य यह कि वीतरागी बनने के पूर्व व्रतों का निष्ठा पूर्वक पालन करता रहे, क्योंकि व्रती पुरुष ही वीतरागी बन पाता है - अव्रती (पापी) नहीं। वीतराग बनने के पूर्व व्रतों का त्याग पतन का कारण है।

(८५)

विकल्प जाल से मुक्ति ही सुख का कारण

यदन्तरजाल संपृक्तमुत्प्रेक्षाजालमात्मनः ।
मूलं दुःखस्य तन्नाशे शिष्टमिष्टं परम पदम् ।।

पर प्रति अंतःजल्पमयी जो
है विकल्प का जाल अनंत।
सब दुःखों का मूल वही है
उसका नाश किये भव अंत ।।

भावार्थ : जो अंतरंग में संकल्प विकल्प मयी वाग्जाल है अर्थात् मन में जो संकल्प ।विंकल्प होते रहते हैं वस्तुतः वे ही संसार में दुःख के कारण हैं। अतः इनसे निवृत्त हो जाना ही परमपद पाने के लिये इष्ट है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८६)

परम पद की प्राप्ति किस क्रम से होती है ?

अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायण: ।
परात्म ज्ञान संपन्न: स्वयमेव परो भवेत् ॥

ज्ञान परायण साधक प्रथमहि
व्रती बने तज अव्रत मलीन ।
व्रत निष्ठित परमात्म ध्यान कर
करै परम पद प्राप्त प्रवीण ॥

भावार्थ : सम्यग्ज्ञानी बन कर सर्वप्रथम अव्रतों का त्याग कर व्रत धारण कस्ते हुए संयमी बनें। तथा व्रतों का निष्ठा पूर्वक पालन करते हुए वही भेद ज्ञानी संयमी आत्मलीन बन वीतरागता प्राप्त कर परमात्मा बने।

(८७)

केवल लिंग को मोक्ष का कारण मानने वालों को मोक्ष नहीं मिलता

लिंगं देहाश्रितं दृष्टं देह एव आत्मनो भव: ।
न मुच्यते भवात्तस्मात् ते ये लिंगकृताग्रह: ॥

लिंग देह के आश्रित रहता
देह हि है जन का संसार ।
केवल लिंगाग्रही अत: नहि
हो सकता भव सागर पार ॥

भावार्थ : मुनि आदि का शारीरिक वेश (लिंग) देह के आश्रित होता है और देह ही आत्मा को संसार परिभ्रमण का कारण है। अत: केवल मुनि का भैष धारण कर लेना और आत्मज्ञान शून्य बने रहकर आत्मलीन न होना मुक्ति प्राप्ति का कारण नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८८)

केवल उच्च जाति भी मोक्ष का कारण नहीं

जातिर्देहाश्रिता दृष्टा देह एव आत्मनो भव: ।
न मुच्यते भवात्तस्मात् ते ये जाति कृताग्रहा: ॥

जाति वस्तुत: देहाश्रित है
देह ग्रहण ही है संसार।
जिन्हें जातिगत आग्रह होता
वे भी नहिं पायें भव पार ॥

भावार्थ : जो व्यक्ति अपनी जाति के उच्च होने से जाति मद में मदांध है एवं आत्मा के परमात्म स्वरूप को भूले हुए केवल उच्च जाति की प्राप्ति ही को मोक्ष का कारण मानते हैं वे भी संसार से मुक्त नहीं होते।

(८९)

निष्कर्ष

जाति लिंग विकल्पेन येषां च समयाग्रह: ।
तेऽपि न प्राप्नुवन्त्येव परमं पदमात्मन: ॥

जिन के मन में जाति लिंग प्रति
आग्रह है पाने भव त्राण।
हो न परमपद प्राप्त उन्हें भी
आवागमन रहित निर्वाण ॥

भावार्थ : शरीर के जिस बाह्य लिंग (भेष) एवं जाति आदि को शास्त्रों में मोक्ष का निमित्त कारण माना गया है – और इन्हें पाकर या धारण कर भी जो आत्म ज्ञान शून्य बने रह कर निर्वाण प्राप्त करना चाहते हैं वे भी निर्वाण प्राप्त नहीं कर पाते।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९०)

मोही जीवों की विपरीत प्रवृत्ति

यत् त्यागाय निवर्त्तन्ते भोगेभ्यो यदाप्तये ।
प्रीतिं तत्रैव कुर्वन्ति द्वेषमन्यत्र मोहिनः ॥

जिस तन विरति हेतु भोगों से
निवृत्त होता सम्यग्दृष्टि ।
करता है अनुराग उसी से
मुक्ति द्वेष वश मिथ्यादृष्टि ॥

भावार्थ : जिस परम पद की प्राप्ति हेतु शरीर से महत्व त्याग या इन्द्रिय भोगों का त्याग किया जाता है – मोही जीव (मिथ्यादृष्टि) उसी शरीर से प्रीति करता है तथा परमपद से वह द्वेष करता है । उसे भोगों में सुख एवं त्याग में दुख प्रतीत होता है ।

(९१)

आंतरिक भेद ज्ञान बिना जीव की दुर्दशा

अनंतरज्ञः संधत्ते दृष्टि पङ्गोर्यथान्धके ।
संयोगात् दृष्ट भेदेऽपि संधत्ते तद्वदात्मनः ॥

अंतस् ज्ञान विहीन व्यक्ति ही
तन भोगों में हो तल्लीन ।
तन में आत्म दृष्टि रख मूरख
यथा पंगुअंधों प्रति दीन ॥

भावार्थ : जैसे पंगु अंधे के कंधे पर बैठ गया और वे दोनों चलने लगे । किसी ने दूर से उन्हें देखा और उन दोनों को एक व्यक्ति मान कर भ्रम में पड़ गया । उसी प्रकार अंतस् में चैतन्य स्वरूप आत्मा को शरीर द्वारा क्रियाएं करता देख शरीर को ही आत्मा मान बहिरात्मा भ्रमित बना रहता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९२)

भेद ज्ञानी भ्रमित नहीं होता

दृष्ट भेदो यथा दृष्टिं पंगोरन्धे न योजयेत् ।
तथा न योजयेद्देहे दृष्टात्मा दृष्टिमात्मन: ।।

आत्म दृष्ट ज्ञानी निजात्म को
जाने तन से भिन्न महान् ।
पंगु अंध द्वय व्यक्ति जानता
ज्यों रहस्य ज्ञानी मतिमान् ।।

भावार्थ : जैसे अंधे के कंधे पर बैठे पंगु को देखकर भी समझदार व्यक्ति उन्हें पृथक् पृथक् दो व्यक्ति ही मानता है वैसे ही शरीर में स्थित आत्मा के देखकर भेद ज्ञानी आत्मा और शरीर दोनों को भिन्न भिन्न ही अनुभव करता है। उन्हें एक मान भ्रमित नहीं होता।

(९३)

आत्मदर्शी भ्रम विहीन होता है

सुप्तोन्मत्ताद्यवस्थैव विभ्रमो ऽनात्मदर्शिनाम् ।
विभ्रमो ऽ क्षीण दोषस्य सर्वावस्था ऽऽ त्मदर्शिन: ।।

सुप्त तथा भ्रम पूर्ण दशाएं
ही माने भ्रमपूर्ण अयान।
मोही की सम्पूर्ण दशाएं
किंतु सुदृष्टि मानता म्लान ।।

भावार्थ : जो आत्मदर्शी नहीं है वह जीव की सुप्त और उन्मत्तादि दशाओं को ही भ्रम पूर्ण मानता है, किंतु आत्म दर्शी को मोही जीव की सभी दशाएं राग द्वेषमयी होने से दूषित ही प्रतीत होती हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९४)

मोही और निर्मोही में गुणात्मक भेद

विदिताशेष शास्त्रोऽपि जाग्रदपि न मुच्यते।
देहात्म दृष्टि र्ज्ञानात्मा सुप्तोन्मत्तो ऽपि मुच्यते॥

तन मोही श्रुतपारग एवं
जाग्रत भी रहता बन दीन।
होता मुक्त सुषुप्तमत्त भी
यदि होवे तन मोह विहीन॥

भावार्थ : देह को ही आत्मा मानने वाला बहिरात्मा यदि सम्पूर्ण शास्त्रों का जानकार हो जाय और जाग्रत भी रहे तो भी वह मुक्त नहीं होता जब कि तत्वज्ञानी अंतरात्मा सुप्त और उन्मत्त दशा को भी यदि प्राप्त हो तो वह यथा समय मुक्त हो जाता है।

(९५)

एक अकाट्य नियम

यत्रैवाहतधी: पुंस: श्रद्धा तत्रैव जायते।
यत्रैव जायते श्रद्धा चित्तं तत्रैव लीयते॥

जिसमें जिसकी बुध्दि रम रही
श्रद्धा भी हो तद् अनुकूल।
श्रध्दा होती जिन विषयों में
मन रमता बन तद् अनुकूल॥

भावार्थ : मनुष्य को जिस विषय में बुध्दि प्रवृत्ति करती है उसकी उसी विषय में श्रद्धा हो जाती है तथा जिस विषय में श्रध्दा होती है मुनष्य उसी में रमण करने लगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१६)

दूसरा नियम

यत्रानाहतधीः पुंसः श्रद्धा तस्मान्निवर्तते ।
यस्मान्निवर्त्तते श्रध्दा कुतश्चित् तस्य तल्लयः ?

जिनमें बुध्दि उपेक्षित रहती
श्रध्दा का नहि तत्र प्रवेश।
बिन श्रध्दा नहि हो तन्मयता
किसी विषय में भी लवलेश ॥

भावार्थ : जिसका जिस विषय में प्रवेश नहीं है उसमें उस व्यक्ति की श्रध्दा या रुचि भी नहीं होती। तथा जब उस विषय में श्रध्दा ही नहीं है उसमें व्यक्ति प्रवेश भी किस प्रकार करेगा ? अर्थात् नहीं करेगा। और न उसमें लीन ही होगा।

(१७)

परमात्मा की उपासना से आत्मा - परमात्मा बन जाता है

भिन्नात्मानमुपास्यात्मा परो भवति तादृशः ।
वर्तिर्दीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी ॥

परमात्मा की कर उपासना
आत्म बने परमात्म महान।
यथा वर्तिका दीपाश्रय से
स्वयं दीप बन रहे निदान ॥

भावार्थ : जैसे दीपक के संसर्ग से वर्तिका (बत्ती) उस से भिन्न होकर भी दीपक बन जाती है वैसे ही परमात्मा की उपासना करने से आत्मा भी परमात्मा बन जाता है। अर्थात् उपासक आत्मा में प्रच्छन्न शक्तियों का विकास होने से वह परमात्मत्व प्राप्त कर लेता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९८)

अथवा स्वयं की उपासना से भी आत्मा परमात्मा बन जाता है

उपास्यात्मानमेवात्मा जायते परमो ऽ थवा।
मथित्वा ऽऽ त्मानमात्मैव जायते ऽ ग्निर्यथा तरु: ॥

अथवा निज की कर उपासना
अंतरात्मा होता शुद्ध।
अरणि स्वयं से घर्षित हो ज्यों
अग्नि रूप परिणमें अबुद्ध ॥

भावार्थ : अथवा आत्मा स्वयं की उपासना कर- स्वयं को बहिर्दृष्टि से मोड़ कर अंतर्मुखी हो आत्मा के शुद्ध स्वरूप का अनुभव करता हुआ अपनी प्रच्छन्न शक्तियों का विकास कर आत्मलीन हो परमात्मा बन जाता है - जैसे वन में अरणि स्वयं से धर्षित होकर अग्नि स्वरूप परिणमन कर लेती है।

(९९)

उपसंहार

इतीदं भावयेन्नित्यमवाचा गोचरं पदम्।
स्वत एव तदाप्नोति यतो नावर्त्तते पुन: ॥

अत: भावना भाओ ऐसी
सत्वर करूं परम पद प्राप्त।
जो है वचनातीत न जिसकी
सीमा होती कभी समाप्त ॥

भावार्थ : उक्त कथन का सार यही है कि या तो परमात्मा (अरहंत- सिध्द) की उपासना - आराधना कर परम परमात्म पद प्राप्त करो या स्वयं में स्वयं के छिपे हुए शुध्द स्वरूप की उपासना कर परमात्मा बनो। जिससे पुन: संसार में लौटना न पड़े व जिसका कभी नाश नहीं होता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१००)

नास्तिक मत की समीक्षा

अयत्न साध्यं निर्वाणं चित्तत्वं भूतजं यदि।
अन्यथा योगतः तस्मान्न दुःखं योगिनां क्वचित् ॥

यदिचित् पंचभूत निर्मित हो
तदि अयत्न ही हो निर्वाण ।
यदि हो योग निरोधों द्वारा
तब योगी मुनि दुखी न जान ॥

भावार्थ : चार्वाक मतानुयायी आत्मा की स्वतंत्र सत्ता न मान पृथ्वी जलादि पंचभूतों से कुछ समय के लिये आत्मा की उत्पत्ति एवं पंचभूतों में ही उसका विलय हो जाना मानता है। ऐसी दशा में निर्वाण प्राप्ति बिना प्रयत्न के ही हो जाती है, उसे यत्न करने की आवश्यकता ही क्या है ? किंतु यदि आत्मा है और उसे कर्म बंधन से मुक्ति दिलाना है तब योगी जनों को तपस्यादि करने में दुख का अनुभव नहीं होना चाहिये। कार्य सिध्दि के लिये श्रम तो करना ही पड़ता है।

(१०१)

आत्मा का कभी नाश नहीं होता

स्वप्ने दृष्टे विनष्टे ऽपि न नाशो ऽस्ति यथात्मनः।
तथा जागरदृष्टे ऽपि विपर्यासाविशेषतः ॥

यथा स्वप्न में नाश निरख कर
नष्ट न होता आत्म स्वरूप।
जाग्रत दशा मध्य भी त्यों ही
नहि विनष्ट होता मम रूप ॥

भावार्थ : बौध्दों की मान्यता है कि निर्वाण प्राप्त होने पर आत्मा शून्य में विलीन हो जाता है- अर्थात् उसका अस्तित्व समाप्त हो जाता है। आचार्य कहते हैं- कि जैसे स्वयं स्वप्न में अपने शरीर का नाश देखने से आत्मा का नाश नहीं होता वैसे जाग्रत दशा में शरीर से पृथक्प्राप्त होने पर आत्मा का नाश नहीं होता, किंतु सच्चिदानंदमयी आत्मा के अनंत गुणों का विकास हो जाने से वह सदा के लिये परमाल्हादमयी सुख भोगता हुआ अनंत काल तक स्थिर रहता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०२)

मुनि को परीषहादि कष्ट सहन कर भी ज्ञानार्जन करने की प्रेरणा

अदु:ख भावितं ज्ञानं क्षीयते दु:ख सन्निधौ ।
तस्माद्यथाबलं दु:खैरात्मानं भावयेन्मुनि: ॥

सुखी दशा में प्राप्त ज्ञान
अति दुखी दशा में होता नष्ट ।
अत: प्रकट कर आत्म शक्तियां
तपकर योगी सहते कष्ट ॥

भावार्थ : बिना दुख सहे सुखी अवस्था में प्राप्त हुआ तन (शरीर) से भिन्नता का ज्ञान शारीरिक कष्ट प्राप्त होने पर विलीन हो जाता है अत: मुनिजन परीषह या उपसर्गादि द्वारा अथवा कायक्लेश जैसे तपों द्वारा आत्म बल प्रकट कर (अपनी शक्ति को न छिपाकर) कष्ट सहन करते हुए स्वयं उत्साह पूर्वक ज्ञान की भावना में दृढ़ता धारण करें । अर्थात् मुनिजनों को कष्ट सहन करते हुए भी आत्म ध्यान करना चाहिये । शारीरिक कष्टों से विचलित न होना चाहिये ।

(१०३)

आत्म भिन्न जड़ शरीर के सक्रिय होने का कारण

प्रयत्नादात्मनो वायु रिच्छाद्वेषप्रवर्तितात् ।
वायो: शरीर यंत्राणि वर्त्तन्ते स्वेषु कर्मसु ॥

राग द्वेष वश यत्न किये
तन निष्ठ वायु प्रेरित हो तत्र ।
वायु प्रेरणा पा शरीर के
अन्य यन्त्र हों चालित तत्र ॥

भावार्थ : जीव की इच्छा या द्वेष वश प्रयत्न शील होने पर शरीर स्थित वायु का संचार होने लगता है और वायु से प्रभावित होकर शरीर के सभी यंत्र भी अपने अपने कार्यों में सक्रिय हो जाते हैं । यत: आत्मा और शरीर के प्रदेश दूध पानी के समान परस्पर मिले हुए हैं अत: एक के सक्रिय होने पर दूसरा भी सक्रिय हो जाता है । किंतु आत्मा और शरीर हैं दोनों भिन्न द्रव्य । अत: शरीर से आत्मा की भिन्नता के संबंध में भ्रमित नहीं होना चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०४)

आत्मा और शीरर की चंचलता दोनों भिन्न भिन्न हैं

तान्यात्मनि समारोप्य साक्षाण्यास्ते सुखं जड़: ।
त्यक्त्वा ऽ रोपं पुनर्विद्वान् प्राप्तोति परमं पदम् ॥

यन्त्रों में निजता रोपण कर
शठ हों दुखी भाव को प्राप्त।
अंतरात्म नहि आरोपण कर
करता सहज परम पद प्राप्त ॥

भावार्थ : शरीर के यंत्रों एवं इन्द्रियों से आत्मा की भिन्नता होने पर भी बहिरात्मा मूढ़ जन उन्हें आत्मा में आरोपण कर - अर्थात् शरीर व इन्द्रियों को ही आत्मा मान कर दुखों का अनुभव करता रहता है जब कि आत्मा को शरीरादि से भिन्न जान एवं अनुभव कर अंतरात्मा ज्ञानी अपने पुरुषार्थ द्वारा बन्धन से मुक्त हो परमात्मा बन जाता है । अत: बहिरात्मपने का परित्याग कर अंतरात्मा बन कर अपने आत्मा के ज्ञान बल से परमात्मा बनाने का प्रयास करना चाहिये ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०५)

अंतरात्मा के प्रयास का फल

मुक्त्वा परत्र परबुध्दिमहं धियं च
संसार दुख जननीं जननाद्विमुक्तः ।
ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठः
तन्मार्गमेतधिगम्य समाधितंत्रम् ॥

तन धनादि में अत्म मान्यता
दुख जननी है चिरकालीन ।
ज्ञान ज्योति का आश्रय लेकर
तजहु सकल भ्रम बुद्धि मलीन ॥
सम्यक् सुखद आत्म में निष्ठा
मुक्ति मार्ग है सूत्र प्रमाण ।
यह समाधितंत्रात्मसात् कर
जन पाता पावन निर्वाण ॥

भावार्थ : शरीरादि पर वस्तुओं में दुख की जननी अहंकार एवं ममकार की बुध्दि का परित्याग करते हुए इस समाधितंत्र स्वरूप मुक्ति मार्ग का अवलंबन लेकर जो अंतरात्मा आत्मनिष्ठ हो जाता है वही ज्ञानज्योति स्वरूप परम सुख को प्राप्त होता है ।

ग्रंथकर्त्ता आचार्य श्री ने ग्रंथ के अंत में कथन को संकोच करते हुए सारभूत समाधितंत्रात्मक मुक्ति मार्ग दर्शाकर संसार में दुखी जीवों को परमात्मा बनने की प्रेरणा की है ।

शुभं भूयात्
इति ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुवादक की मंगल कामना

दोहा

शाश्वत सुख संप्राप्तिहित जिनवाणी अनुसार।
पूज्यपाद स्वामी रची यह कृति परम उदार॥
बहिरातमता तज बने अंतरात्म अमलीन।
परमातम का ध्यान कर करें कर्म मल क्षीण॥
यह समाधि का तंत्र है मुक्ति महल सोपान।
आरोहण कर भव्य जन पायें पद निर्वाण॥

विनीत :-

नाथूराम डोंगरीय जैन

4476

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानव के मोही मन से –

विश्व रंग भू में अदृश्य रह
बन कर योगिराज सा मौन
मानव जीवन के अभिनय का
संचालन करता है कौन ?
किसके इंगित पर संसृति में ये जन मारे फिरते हैं ?
मृगतृष्णा में शांति सुधार की भ्रांत कल्पना करते हैं ?

आशा और निराशाओं की
धारा कहाँ बहा करतीं ?
अभिलाषाएँ कहाँ निरन्तर
नव क्रीड़ा करती रहतीं ?
क्षण भंगुर यौवन श्री पर यह इठलाता है इतना कौन ?
रूप राशि पर मोहित होकर शिशु सा मचला करता है कौन ?

बिन पग विश्व विपिन में प्रायः
करता कौन स्वच्छंद विहार ?
बन सम्राट राज्य बिन किसने
कर रक्खा सब पर अधिकार ?
रोकर कभी विहँसता तत्क्षण ही चिंतित हो जाता है।
भाव भंगिमा के गिरगिट सम नाना रंग बदलता है।

चित्र विचित्र बनाया करता
बिन रँग ही रह अंतर्ध्यान।
किसने चित्रकला का ऐसा
पाया है अनुपम वरदान ?
प्रिय मन ! तेरी रहस्यमय यह सब अजब कहानी है !
केवल जगती पर कर सकता मन ! तू मनमानी है।

विषय वासना रहता ज्यों
त्यों यदि प्रभु चरणों में प्यार
करता तो अब तक हो जाता
भवसागर से बेड़ा पार।

नाथूराम डोंगरीय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक व संपादक की सर्वोपयोगी अन्य रचनाएँ

१. समयसार वैभव – यह महान ग्रंथ समयसार का 'सरल' सुबोध भाषा में भावार्थ सहित पद्यानुवाद है। मूल समयसार में भगवत्कुंदकुंद के अध्यात्म अमृत सिन्धु का सरलता से पान करने हे[illegible] इसकी रचना की गई है। ग्रंथ का सार समझने हेतु पू. आचार्य वि[illegible]जी द्वारा प्रस्तवन एवं विद्वद्वर पं. जगन्मोहनलालजी सिद्धां[illegible]शास्त्रीजी की विस्तृत भूमिका है। न्यो. २१ रु. हैं।

२. प्रवचनसार सौरभ – उक्त आचार्य श्री के ही प्र[illegible]सार नामक महान ग्रंथ का सरल हिन्दी भाषा में यह अर्थ सहित पद्यानुवाद है। सर्व सा[illegible] को स्वाध्याय में सरलता हेतु मूल तथा हिंदी पद्य के साथ-साथ नीचे भावार्थ भी दिया [illegible] है ? इसकी भूमिका भी श्रद्धेय पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री ने लिखी है। न्यो. ७ रु. है।

३. रत्नकरण्ड गौरव – यह श्री स्वामी समंतभद्राचार्य के 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' ग्रंथ का राष्ट्रीय भाषा हिन्दी में भावार्थ सहित पद्यानुवाद है। इसमें सर्व साधारण को सरल भाषा में स्वामीजी ने व्यावहारिक धरातल पर सार्वधर्म का स्वरूप समझाते हुए जीवन में उसकी आवश्यकता एवं उपयोगिता समझाई है। जिसके पद्यों को कण्ठाग्र कर नित्य पाठ के उपयोग में भी लिया जा सकता है। (१५ रु.)

४. द्रव्यसंग्रह दीपिका – यह श्रीमन्नेमिचन्द्राचार्य विरचित बृहद्द्रव्यसंग्रह ग्रंथ का राष्ट्रभाषा हिंदी में भावार्थ सहित पद्यानुवाद है। (२.५० रु.)

५. जैन धर्म – यह जैन पताका से सुसज्जित सर्व साधारण को जैन धर्म के सार्वजनीन स्वरूप, महत्व, प्राचीनता, समीचीनता एवं सिद्धातों का परिज्ञान कराने के उद्देश्य से लिखी गई पुस्तक है। जिसकी अब तक १६,००० प्रतियाँ छह संस्करणों में मुद्रित हो चुकी हैं। धर्म प्रभावनार्थ भेंट स्वरूप वितरण के लिए यह सर्व प्रशंसित है। इसके पढ़ने से कोई भी व्यक्ति यह जान सकता है कि जैन धर्म क्या है ? (३ रु.)

६. प्रश्नोत्तर रत्न मालिका – यह राजर्षि अमोघ वर्ष की अद्वितीय अद्भुत कृति का मूल सहित हिन्दी में भावानुवाद है। जो प्रत्येक व्यक्ति को आत्महितार्थ कंठस्थ करने योग्य है। (निशुल्क)

७. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय संदर्शिका – मूल के साथ हिंदी गद्य पद्य में स्वाध्याय योग्य। आध्यात्मिक श्रावकाचार। (निशुल्क)

८ भगवान गोम्मटेश बाहुबली – सचित्र इतिहास एवं पूजन सहित। (निशुल्क)

९. रक्षाबंधन कथा – यह भी सरल पद्यों में राधेश्याम रामायण की तर्ज में सर्वोपयोगी रचना है। साथ में सलूना पूजन भी संलग्न है। (निशुल्क)

पता :- जैन साहित्य प्रकाशन, ५४९, सुदामा नगर, इन्दौर - ४५२००९ (म.प्र.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi